ओ३म्

आर्य जगत

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 27 मार्च 2016 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 27 मार्च 2016 से 02 अप्रैल 2016

चै.कृ.–04 ● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 65, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 193 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, बवाना के बच्चे पहुँचे आर्य समाज (अनारकली)

डी.ए.वी पब्लिक स्कूल, बवाना के आर्य युवासमाज के सदस्य मंदिर मार्ग स्थित आर्य समाज (अनारकली) के सत्संग में भाग लेने के लिए गए। वहाँ उन्होंने यज्ञ में भाग लिया। अपने अध्यापकों के सहयोग से विद्यार्थियों ने अपनी मधुर वाणी द्वारा स्वामी दयानंद और ओ३म् का गुणगान किया। इस अवसर पर उपस्थित श्री नरेंद्र सोलंकी जी ने मंत्र–मुग्ध करने वाले भजन प्रस्तुत किए। सभी ने सत्संग का भरपूर आनंद उठाया।

यह अवसर और अधिक विशिष्ट तब बन गया, जब माननीय प्रधान श्री पूनम सूरी जी वहाँ पहुँचे। डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल बनाना की प्रधानाचार्या श्रीमती प्रेम ठकारान और दयानंद मॉडल स्कूल मंदिर मार्ग की प्रधानाचार्या श्रीमती स्नेह मोहन ने फूलों द्वारा उनका अभिनंदन किया। माननीय प्रधान जी ने वहाँ उपस्थित सभी आर्य जनों को शुभकामनाएँ दी और बच्चों की प्रशंसा करते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया।

अबोहर में डी.ए.वी. मॉडल स्कूल में ऋषि बोधोत्सव मनाया गया

ऋषि बोधोत्सव पर्व के अवसर पर एल आर एस डी.ए.वी सै. मॉडल स्कूल में विशेष यज्ञ व भजन का आयोजन किया गया। इस अवसर पर वैदिक विदुषी डॉ. श्रीमती सरोज मिगलानी व डॉ. सुशील रत्न मिगलानी मुख्य अतिथि थे। यज्ञशाला में मुख्य यजमानों के साथ–साथ प्राचार्या श्रीमती कुसुम खुंगर व शिक्षक वर्ग द्वारा पवित्र यज्ञ में आहुतियाँ प्रदान की गईं व सामूहिक प्रार्थना की गई।

प्राचार्या श्रीमती कुसुम खुंगर ने आए हुए अतिथियों का स्वागत किया व संबोधित करते हुए कहा की भजनों के माध्यम से की गई प्रार्थना ईश्वर अवश्य स्वीकार करते हैं। उन्होंने कहा कि हमें महर्षि दयानंद जी द्वारा दिखाए गए मार्गों व आदर्शों का जीवन में अनुसरण करना चाहिए।

विद्यालय के सभागार में आयोजित भजन गायन कार्यक्रम में विद्यालय स्टाफ के सदस्यों श्रीमती हरप्रीत कौर, सुनीता सचदेवा, अल्का सतीजा, नीरु गुलबद्धर, रजनी छाबड़ा, दीक्षा बतरा, विपुला आहूजा, तरणदीपकौर, प्रिया छाबड़ा, शिल्पा बजाज, रवि कुमार, विकास खेर व नीरज शर्मा द्वारा सामूहिक भजन गायन किया गया। इस अवसर पर महात्मा गाँधी विद्यालय की प्राचार्य श्रीमती ऊषा बतरा के साथ स्टाफ सदस्य, डी ए वी शताब्दी पब्लिक स्कूल फाजिल्का के प्राचार्या श्री संजय खन्ना, श्री गुरु जम्भेश्वर डी ए वी स्कूल हरिपुरा, की प्राचार्या श्रीमती स्मिता शर्मा नारंग विशेष रुप से उपस्थित थे।

डी. ए.वी. पिलखुला ने मनाया रजत जयंती समारोह

लाला शंभू दयाल डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल पिलखुआ का रजत जयंती समारोह धूमधाम से मनाया गया। सर्वप्रथम वैदिक परम्परा का निर्वहण करते हुए दो कुण्डीय यज्ञ सम्पन्न हुआ। विशिष्ट अतिथि डॉ. एस. मारिया निदेशक उ.प्र. एवं उत्तराखण्ड परिक्षेत्र, मुख्य अतिथि डा. एम. सी. शर्मा, कोषाध्यक्ष डी.ए.वी. मैनेजिंग कमेटी नई दिल्ली, डॉ.–लक्ष्मी मिश्रा कोषाध्यक्ष एवं प्रशासनिक अधिकारी, एवं विद्यालय की प्राचार्या श्रीमति रेखा मोहिले के कर कमलों द्वारादीप प्रज्ज्वलन किया गया। विद्यालय के छात्र–छात्राओं ने अनेकानेक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किए। संस्था की प्राचार्या ने संस्था का विवरण प्रस्तुत किया तथा कक्षा दसवीं, बारहवीं के मेधावी छात्र–छात्राओं को प्रशस्ति पत्र एवं प्रमाण पत्र शील्ड सहित प्रदान कर पुरस्कृत किया गया।

कार्यक्रम के अन्त में डॉ.–एस मारिया ने अपने ओजस्वी वक्तव्य से सभी का उत्साहवर्धन कर संस्था की प्रधानाचार्या श्रीमति रेखा मोहिले को निरंतर शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी रहने पर बधाई एवं शुभकामनाएँ दीं। साथ ही विद्यालय के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए अपना उद्बोधन दिया। शान्तिपाठ एवं राष्ट्रगान के साथ ही रजत जयंती उत्सव सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – **पूनम सूरी**

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 27 मार्च, 2016 से 02 अप्रैल, 2016

हिरण्य-धारण

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम्।
इद् हिरण्यं वर्चस्वज्, जैत्रायाविशतादु माम्।।

यजु ३४.५०

ऋषिः **दक्षः**। देवता **हिरण्यं तेजः** छन्दः **भुरिग् उष्णिक्।**

● **(आयुष्यं)** आयु के लिए हितकर, **(वर्चस्यं)** ब्रह्मवर्चस को प्राप्त कराने वाला, **(रायस्पोषं)** ऐश्वर्य का पोषक **(औद्भिदं)** (शत्रुओं, विघ्न–बाधाओं एवं दुःखों को) उद्भिन्न कर देने वाला **(इदं)** यह **(वर्चस्वत्)** आत्म–कान्ति से युक्त **(हिरण्यं)** हिरण्मय तेज **(जैत्राय)** विजय के लिए **(मां)** मुझमें **(आविशतात् उ)** प्रविष्ट होवे।

● संसार के युद्ध–क्षेत्र में शत्रुओं, विघ्न–बाधाओं और दुःखों से संघर्ष करते हुए मुझे विजय प्राप्त करनी है। यदि मैंने विजय का उपाय न किया तो शत्रु मुझे निगल जायेंगे, बाधाएँ एक पग भी आगे न बढ़ने देंगी, दुःख निरन्तर कचोटते रहेंगे। इन सब पर विजय पाने के लिए आवश्यक है कि मैं 'हिरण्य' धारण करूँ। 'हिरण्य' सुवर्ण का नाम है। सुवर्ण तेजस्वी होता है, अतः ज्योति या तेज को भी 'हिरण्य' कहते हैं। मैं अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा में 'ज्योति' को धारण करूँगा। शरीर को स्वस्थ, सबल, तेजस्वी बनाऊँगा। मन को शिव संकल्पवाला, अडिग, तेजोमय बनाऊँगा।

बुद्धि को त्वरित गति से सही निश्चय पर पहुँचनेवाली, शक्तिशालिनी, भास्वती बनाऊँगा। आत्मा को बलवान, विवेकशील, ज्योतिष्मान् एवं वर्चस्वी बनाऊँगा। अब तक मैं व्यथे ही सुवर्ण के आभूषण बनवाकर अंगुली, कलाई, कान आदि शरीर के किसी अंग में पहनकर यह मानता था कि मैंने 'हिरण्य' धारण कर लिया। पर आज मुझे ज्ञात हो गया है कि असली हिरण्य तो ज्योति या तेज है, जिसे अंग–अंग में धारण कर लने से मनुष्य अत्यन्त शक्तिशाली हो जाता है। शरीर के एक बहुमूल्य तत्त्व 'वीर्य' को भी शास्त्रकारों ने 'हिरण्य' कहा है। इस 'वीर्य' या 'रेतस्' को अनावश्यक रूप से प्रस्खलित न कर शरीर में धारण कर लेना एंव 'उर्ध्वरेताः' बन जाना ज्योति या तेज की प्राप्ति का एक सफल उपाय है। यह ज्योति, तेज और वीर्य रूप हिरण्य का धारण दीर्घ एवं उत्तम आयु को देनेवाला है, ब्रह्मवर्चस को प्राप्त करनेवाला है, भौतिक तथा आध्यात्मिक ऐश्वर्य की पुष्टि को देनेवाला है। यह 'औद्भिद' है, बीज का अंकुर जैसे भूमि की परत को फाड़कर ऊपर आ जाता है, वैसे ही यह सब प्रकार की भौतिक और मानसिक रूकावटों को, विविध दुःखों और पीड़ाओं को एवं बाह्य और आन्तरिक रिपुओं को उद्भिन्न करके उत्कर्ष की ओर ले जानेवाला है। यह 'हिरण्य' मेरे अन्दर प्रवेश करे, प्रचुरता और तीव्रता के साथ प्रवेश करे।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रभु - भक्ति

● महात्मा आनन्द स्वामी

मन की निर्मलता के लिए पाँचवाँ साधन प्रभु के निमित्त काम करना है। इससे मन की निर्मलता बढ़ती है, मानसिक संकोच नष्ट होता है, शूद्रता जाती रहती है, विशालता का विस्तार होता है। मन का निर्मल करने का छठा उपाय है "उपासना" अर्थात् पास बैठना।

परमात्मा तर्क से परे है अर्थात् मस्तिष्क से ऊपर है और हृदय में ही, जो प्रेम, श्रद्धा और भक्ति का स्थान है, उसके दर्शन होते हैं। जीवन काल में प्रभु दर्शन हृदयाकाश में होते हैं और मृत्यु के समय आत्मा के ब्रह्म चक्र में। भक्त के लिए आवश्यक है कि वह ब्रह्मचक्र तक अपनी गति कर ले। यहीं दर्शन होते हैं और मृत्यु समय में इसी ब्रह्मचक्र द्वारा भक्त की आत्मा शरीर त्याग देती हैं।

अब आगे...

मन की निर्बलता

मन को वश में करने के साधनों का वर्णन करने के साथ मन के विषय में यह बात समझ लेना भी आवश्यक है कि मन के गुण क्या हैं। यदि यह मालूम हो जाय कि इसकी दौड़ कहाँ तक है तो फिर इसे काबू करना सरल हो जाता है। मनुष्य–शरीर की एक–एक नस–नाड़ी की खोज कर डालने वाले ऋषियों ने शरीर के उन सारे तत्त्वों और द्रव्यों को भी ढूँढ निकाला है, जिनसे यह शरीर बना है। इसी प्रकार संसार के बनने में जो वस्तु और पदार्थ काम में लाए गए हैं, उसके विषय में भी ऋषियों ने पूरा पता दिया है। दर्शन–ग्रन्थों में इनका बहुत वर्णन आता है। वैशेषिक दर्शन में बतलाया है कि निम्नोक्त नव द्रव्य हैं–पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। शरीर–निर्माण में भी इन्हीं द्रव्यों का प्रयोग हुआ है। ऋषियों ने इन द्रव्यों के स्वरूप, लक्षण और गुण का लिंग भी मालूम कर लिया और बताया कि पृथिवी का लिंग गन्ध, जल का रस, तेज का रूप, वायु का स्पर्श, आकाश का शब्द, और आत्मा का इच्छा है। द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान की व्याख्या के पश्चात् 'मन' की बात भी कही।

दर्शनों के विषय में यह सारी प्रस्तावना मैंने केवल मन की बात कहने के लिए यहाँ उद्धृत की है, अन्यथा तर्क–वितर्क की इन बातों में उलझने का मेरा कोई प्रयोजन नहीं। परन्तु 'न्यायदर्शन' के कर्त्ता ने मन के विषय में एक ऐसी महत्त्वपूर्ण बात कही है जो मन को काबू में करने का प्रयत्न करने वालों के लिए बड़े काम की चीज है। किसी भी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक होता है कि उसका कोई कमजोर स्थान मालूम किया जाय; और मन पर विजय प्राप्त करने वाले यह सुनकर प्रसन्न होंगे कि 'न्यायदर्शन' ने मन की निर्बलता भली भाँति दर्शा दी है–

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्।। न्याय.1–1–13।।

"जिससे एक काल में दो पदार्थों का ग्रहण और ज्ञान नहीं होता, उसको मन कहते हैं।" जब यह पता लग गया कि मन तो एक समय में केवल एक ही काम कर सकता है, एक काल में एक ही विषय को ग्रहण करने की सामर्थ्य रखता है, एक क्षण में एक ही वस्तु का इसे ज्ञान हो सकता है, दो का नहीं, तो फिर इसे एक भगवान् की ज्योति की ओर लगाने में कौन–सी कठिनाई रह जाएगी? केवल एक बार बलपूर्वक प्रयत्न करने और 'हठ' करने की आवश्यकता है। जब एक बार इसे 'आरटन' से लगा दिया, बस यह उसी में लगा रहेगा। यह किसी दूसरे पदार्थ की ओर जा ही नहीं सकेगा। मन की इस निर्बलता से भक्त लोग अवश्य लाभ उठाएँ और इसे एक भगवान् की ओर लगाने का प्रयत्न करें, अवश्य सफलता मिलेगी।

मन को एक और ढंग से भी समझाया जा सकता है और वह यह है कि जब उपासना में बैठे और मन उपासना को छोड़ कहीं और खिसकने लगे, तब मन से कहो–अरे! तू कहाँ जाने लगा है? क्या पुरुषों के समूह में? क्या स्त्रियों के जमघट में? सुन–सुन, ऐसा न कर! वहाँ जाने से तू बड़ा अपमानित होगा, तेरी खिल्ली उड़ेगी। तू है नपुंसक, स्त्री–पुरुषों में जाने से तेरी हँसी होगी। तू अपनी बिरादरी में चल, वहाँ तेरी दाल गल सकेगी। (याद रहे, व्याकरण की दृष्टि में मन नपुंसक लिंग है और ब्रह्म भी नपुंसक लिंग है, इसीलिए साधक मन को कह रहा है कि) अरे मन! ब्रह्म के पास चल, ताकि तेरा मान हो। उदास न हो! मन को उसका यथार्थ स्पष्ट याद कराने से उसको अपनी निर्बलता का पता लग जाएगा और वह स्त्री–पुरुषों के समूह में जाना छोड़कर अपने लिंग वाले ब्रह्म के पास बैठने को तैयार हो जाएगा।

क्रमशः....

वेदोद्धारक स्वामी दयानन्द

● **श्री हरिश्चन्द्र वर्मा**

> **स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म को पुनर्जीवित करने की जो शपथ ली थी यह कार्य अतिदुष्कर था। वे जानते थे कि इस कार्य के आरम्भ करते ही सारा संसार उनके विरुद्ध खड़ा हो जायेगा। ब्राह्मण–पुजारी–वर्ग सुधार करने वाले को फूटी आँख न देखेगा। स्वामी दयानन्द ने एक बार अपने भाषण में कहा था कि मैं कोई नया मत या सम्प्रदाय नहीं चला रहा, मैं तो ब्रह्मा से जैमिनी ऋषि पर्यन्त प्रतिपादित वैदिक धर्म की प्रतिष्ठापना करना चाहता हूँ और उन वेदों जिनका हम से पूर्व के भाष्यकारों ने अनर्थ कर डाला है, उनके सत्यार्थ को सबके सामने रखना चाहता हूँ कि वह न बहुदेववाद है, न उनमें कहीं ईश्वर के स्थान पर प्रतिमा पूजन का स्थान है। डा. रूपचन्द दीपक जी ने सन् 2011 के 'आर्य मित्र' दीपावली विशेषांक में लिखा है**

स्वामी दयानन्द का बचपन का नाम मूलशंकर था, उनको शिवदर्शन की बड़ी लालसा थी। जब वे 14 वर्ष के हुए तब पिता करसन जी की आज्ञा से शिवरात्रि का व्रत रखा। मूलशंकर शिव दर्शन के लिये मन्दिर में रात जागते रहे। अर्धरात्रि के समय जब उन्होंने देखा कि शिव पिंडी पर मूषकों का दल उछल कूद कर रहा है, तब उनका पत्थर के शिव पर से विश्वास उठ गया और सच्चे शिव को जानने की उनमें जागृति उत्पन्न हो गई।

उसके पश्चात छोटी बहिन और स्नेही चाचा की मृत्यु ने उनके मन में वैराग्य का भाव जगा दिया। (इन सब घटनाओं से ऐसा लगता है कि ईश्वरीय नियम उन्हे प्रेरित कर रहा था कि वे उस जगह पहुच जाँय जहाँ वे वेदों को समझकर वैदिक धर्म का प्रचार कर सकें)

अतः शिव दर्शन और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिये उन्होंने 1846 में दिव्य ज्ञान की खोज में गृह त्याग दिया। सबसे बचते और अपने को बचाते हुए, निर्विघ्न विद्या एवं आध्यात्म साधना के लिये, शुद्ध चैतन्य स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से सन्यास ग्रहण किया और स्वामी दयानन्द सरस्वती नाम पाया। उसके पश्चात अनेक प्रकार के योगियों, अद्वैतवादियों से मिलते रहे। सच्चे योगियों की खोज में उत्तराखण्ड के शीत प्रधान स्थानों में कठोर यात्रा की और नर्मदा क्षेत्र का भी भ्रमण किया। परन्तु उन्हें वहाँ भी कहीं सच्चे योगियों का साक्षात्कार न हुआ। इस प्रकार 15 वर्ष तक यथार्थ ज्ञान की खोज में भटकते रहे।

परन्तु 1860 में जब उन्होंने जाना कि मथुरा में स्वामी विरजानन्द नाम से एक वृद्ध चक्षु विहीन सन्यासी रहते हैं जो संस्कृत के पण्डित हैं और व्याकरण की पाठशाला चलाते हैं, तब दयानन्द उनकी कुटिया में जा पहुंचे, और गुरु से प्रार्थना की कि हमें आपके द्वारा सत्यार्थ को जानना है, कृपा करके हमें शिक्षा प्रदान करें। गुरु जी प्रसन्न होकर शिक्षा देने के लिये प्रस्तुत हो गये।

तीन वर्ष के शिक्षण काल में स्वामी दयानन्द को संस्कृत व्याकरण, अष्टध्यायी, निरुक्त आदि आर्ष ग्रन्थों की कुंजी और वेदों का सही स्वरूप ज्ञात हो गया। उनसे गुरुजी ने कहा कि वैदिक ग्रन्थों के अनर्थ के कारण सब अवैदिक आचरण आडम्बर, कुसंस्कार, कुरीतियों में फंसे हुए हैं, उन सबको वेदों के सत्यार्थ से यही मार्ग का दर्शन कराना है। स्वामी दयानन्द ने गुरु के इन वचनों के पालन के लिये, अनार्ष का खण्डन एवं आर्ष प्रचार हेतु जीवन अर्पित करने की गुरु दक्षिणा देकर गुरुदेव को प्रणाम किया और मथुरा छोड़ दिया।

स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म को पुनर्जीवित करने की जो शपथ ली थी यह कार्य अतिदुष्कर था। वे जानते थे कि इस कार्य के आरम्भ करते ही सारा संसार उनके विरुद्ध खड़ा हो जायेगा। ब्राह्मण–पुजारी–वर्ग सुधार करने वाले को फूटी आँख न देखेगा। स्वामी दयानन्द ने एक बार अपने भाषण में कहा था कि मैं कोई नया मत या सम्प्रदाय नहीं चला रहा, मैं तो ब्रह्मा से जैमिनी ऋषि पर्यन्त प्रतिपादित वैदिक धर्म की प्रतिष्ठापना करना चाहता हूँ और उन वेदों जिनका हम से पूर्व के भाष्यकारों ने अनर्थ कर डाला है, उनके सत्यार्थ को सबके सामने रखना चाहता हूँ कि वह न बहुदेववाद है, न उनमें कहीं ईश्वर के स्थान पर प्रतिमा पूजन का स्थान है। डा. रूपचन्द दीपक जी ने सन् 2011 के 'आर्य मित्र' दीपावली विशेषांक में लिखा है कि,

"स्वामी दयानन्द जब मथुरा छोड़ आगरा आये तब विचारोपरान्त कार्य प्रारम्भ कर दिया। 'भागवत पुराण जो धर्म के नाम पर एक अनार्ष ग्रन्थ प्रचलित है, उसके विरुद्ध एक पत्रक छपवाकर पण्डितों को एक झटका दिया। आरम्भ में बड़े पण्डितों ने उनकी उपेक्षा की किन्तु जब उनकी विशिष्ट भाषण–कला और प्रभावशाली तर्कों से जन समूह को आकर्षित होते देखा तो उन्हें चाहे–अनचाहे शास्त्रार्थ समर में कूदना पड़ा। स्वामी दयानन्द की युक्तियाँ इतनी प्रबल थीं कि पारम्परिक पण्डितों को अपनी प्रतिष्ठा बचाना संभव न लगा। पण्डितों ने काशी की पण्डित–मण्डली से शास्त्रीय सहायता की प्रार्थना की। किन्तु स्वामी दयानन्द स्वयं ही काशी पहुँच गये और उन्होंने शास्त्रार्थ की चुनौती दे दी। वहाँ 16 नवम्बर, 1869 को प्रसिद्ध काशी–शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्द के पक्ष (वेदों में मूर्त्तिपूजा नहीं है) की विजय हुई थी, किन्तु अध्यक्ष ने चतुराई करके उनके विरुद्ध संकेत कर दिया था। तथापि बुद्धिमान लोग वास्तविकता समझ गये थे और स्वामी दयानन्द के अनुयायी होने लगे थे। स्वामी दयानन्द वाद में भी अनेक बार काशी आये, प्रत्येक बार शास्त्रार्थ की चुनौती दी, किन्तु किसी ने चुनौती स्वीकार न की।"

स्वामी दयानन्द के समय वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध जितने मत–सम्प्रदाय देश में इन पौराणिक धर्मगुरुओं ने फैला रखे थे, उन सबका खण्डन करते हुए सच्चे मार्ग का दर्शन कराते रहे। बाल विवाह निषध, एवं विधवाओं को सारे अधिकार मिलें, वेदों को सब कोई पढ़े क्योंकि, **"ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाह चारणाय"** (ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका–पृ.456) वेदाधिकार जैसा ब्रह्मण वर्ण के लिये है वैसा ही क्षत्रिय, अर्य=वैश्य, शूद्र पुत्र, भृत्य और अति शूद्र के लिये भी बराबर है। क्योंकि जो विद्या का पुस्तक होता है, वह सबका हितकारक है। इसलिये उसका जानना सब मनुष्यों को उचित है। सब कोई नारी को मातृत्व शक्ति के रूप में समझे। क्योंकि नारी जाति को स्वामी जी पूजनीय मानते थे। उन्होंने 5000 वर्षों के बाद सबल स्वरों में यह घोषित किया कि **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।"** बालक–बालिका शिक्षित बनें इसके लिये विद्यालय, कन्या विद्यालय खोले जाँय ताकि सब कोई शिक्षित होकर एक अच्छे समाज का निर्माण करें।

"न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद् सः" परमेश्वर की कोई प्रतिमामूर्त्ति नहीं बन सकती जिसका नाम महान यशदायक है। उसकी दैवी शक्तियों की भी मूर्त्ति नहीं बन सकती। क्या प्राण की, वायु की, मन की, बुद्धि की तथा आत्मा की मूर्त्ति बन सकती है? जब इन सब की मूर्त्ति नहीं बन सकती तो ईश्वर तो अत्यन्त सूक्ष्म और व्यापक है उसकी मूर्त्ति भला कैसे बन सकती है। और जो ब्राह्मणों के पुराण के अनुसार बनाई जाती है वह सब मनगढ़न्त काल्पनिक है। उन मूर्त्तियों को उन्हें अमुक देवी–देवता बताकर ब्राह्मण=पुजारी लोग धर्मान्ध लोगों से (उन सबका महत्व वर्णनकर) पूजा करवाते रहते थे और दान दक्षिणा लेते रहते थे।

स्वामी जी के वेद के आधार पर मूर्त्तिपूजा खण्डन करने पर भी, ब्राह्मणवादियों ने प्रतिमा पूजन को नहीं छोड़ा, ये लोग नहीं चाहते थे कि कोई वैदिक धर्म के सत्यार्थ को समझे।

स्वामी जी सभी को सामग्रियों से यज्ञ करने का आदेश देते रहे ताक वायु आदि का शोधन होता रहे। ईश्वरानन्द की प्राप्ति के लिये सन्ध्योपासना और योगाभ्यास करने के विधि विधान 'संस्कार विधि' और 'सत्यार्थ प्रकाश' में प्रस्तुत कर दिये।

स्वामी जी चाहते थे कि सब जाति भेद मिटाकर कर्मगत जाति को स्वीकार करें, ब्राह्मणों के चलाये हुए जन्मगत को नहीं। इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने अनेक सुधार कार्य किये और धर्म को समझने के लिये 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना कर दी ताकि सब कोई धर्म सम्बन्धी सत्यासत्य का निर्णय कर सके।

स्वामी जी ने 1875 में आर्य समाज की स्थापना इसलिये की ताकि आर्य समाज की प्रगति होता रहे और विद्वजन देश–विदेश में जाकर सबको वैदिक धर्म से परिचय करावें तथा देश में फैली हुए कुरीतियों, कुसंस्कारों को दूर कर सभी को सच्चे मार्ग का दर्शन कराते रहें। अतः उस समय स्वामी जी के पथ का अनुसरण करते हुए हमारे पूर्वजों ने वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार में अपना स्वर्वस्व लगा दिया, फलतः सभी क्षेत्रों में सफलता चरण चूमने लगी थी। विद्या का प्रकाश फैल रहा था। नारी का शोषण थम गया था। सबमें नव चेतना आने लगी थी, स्वाभिमान जाग उठा था। गुरुडम, पाखण्ड पर अंकुश लगने लगा था। इस प्रकार आर्य समाज की उन्नति महात्मा आनन्द स्वामी तक होती रही, उसके बाद से आर्य–सामाज का आन्दोलन कम होता गया। हमारी रुचि मन्द होती गई, आपस के पद व धनलिप्सा ने आर्य समाज को कमजोर बना दिया, अब वह प्रतिभा नहीं रह गयी है। इसीलिये तो ब्राह्मणवाद, पौराणिकता की बन पड़ी है, अध्यात्म के नाम पर विविध टी.वी. चैनलों पर उपदेश सुनाये जाते हैं, परन्तु उनमें अध्यात्म के नाम पर गुरुडम फैलाया जा रहा है। इसके अलावा 'पीस' चैनेल पर वैदिक धर्म की मनमानी व्याख्या की जा रही है। जिन वेदों को विद्या की पुस्तक कहा जाता है, उसकी गलत व्याख्या करना अल्पज्ञता है। सबको उचित है कि यथार्थ को समझा करें।

मु.पो. मुराई,
जिला वीरभूम (प. बंगाल)–731219

आस्तिक बुद्धि (भावना)

● भद्रसेन

अस्ति से आस्तिक शब्द बनता है। अस्ति का अर्थ है = है, होना और आस्तिक का अर्थ हुआ=होने का भाव, होने का विचार रखने वाला। इसके साथ लगे बुद्धि शब्द का भाव है–समझ। अतः आस्तिक बुद्धि का भाव हुआ–ईश्वर की सत्ता है तथा कर्मफल व्यवस्था है, ऐसा विश्वास रखने वाला, ऐसी समझ वाला ही आस्तिक बुद्धि युक्त होता है। इसीलिए–आओ! ईश्वर को समझें–

एक बार महर्षि स्वामी दयानन्द के पास एक व्यक्ति आया। जो कि शारीरिक डील–डोल, चाल–ढाल, बोल–चाल से स्पष्ट पहलवान लगता था। अपने प्रदेश में विजयी पहलवान के रूप में उसकी ख्याति थी। पहलवानी स्वभाव के अनुरूप आते ही एकदम अकड़कर बोला–ओ बाबे! तू हमारे ठाकुर को भगवान क्यों नहीं मानता? संकेत करने पर भी जब वह नहीं बैठा, तो स्वामी जी ने पूछा–क्या आप अखाड़े में किसी के साथ कुश्ती किसी ढंग से करते हो? या ऐसे ही, तब कुछ नम्र होकर बोला–वहाँ हर बात ढंग से होती है। इस पर महर्षि ने कहा–विचारों के अखाड़े में भी कोई प्रक्रिया होनी चाहिए। महर्षि ने उसमें आते परिवर्तन को अनुभव करके कहा, कि आपने आते ही बाबा कहा। बाबा शब्द आदर देने के लिए कहा जाता है। अतः अपनी बात को ही सम्मान देते हुए पहले आराम से बैठो, फिर ढंग से बात करो।

वह पहलवान तब महर्षि के पास बैठ गया। जब वह, जल पी चुका, तो महर्षि ने पूछा–क्या आप भगवान को मानते हैं? हाँ, महाराज! बड़ी श्रद्धा और विश्वास से मैं ईश्वर को मानता हूँ। अपनी आस्तिकता पर मुझे गर्व है। इस पर महर्षि ने पूछा, कि आप ईश्वर को क्यों अर्थात किस आधार पर मानते हैं?

तब पहलवान ने अपनी बात पर जोर देते हुए कहा–क्योंकि ईश्वर ही इस सारे संसार को बनाता, पालता और संभालता है। इसीलिए बड़ी आस्था से मैं ईश्वर को सदा मानता हूँ। यह बात हर तरह से पक्की, सुनिश्चित है। इस पर महर्षि ने सहज भाव से कहा–आप अपनी बात से पलट तो नहीं जाओगे। तब छाती चौड़ी करके पहलवान ने कहा–मैं अपनी बात का पक्का हूँ। इसलिए इससे पलटने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने विचार–विमर्श को और सरल बनाते हुए कहा–पहलवान महाशय! हमारे वेद, उपनिषद, दर्शन आदि शास्त्र भी यही समझाते हैं। जैसा कि आपने अभी कहा है–ईश्वर वही है, जो सारे संसार को बनाता, चलाता, पालता है। उदाहरण के लिए शास्त्रों के वचन देखिए–

इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमनत्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।। ऋग् 10, 129, 7

न तम् विदाथ य इमा जजान– यजु. 17, 31
अर्थात इस विविध प्रकार की रचना से भरी सृष्टि को वही बनाता और धारण करता है। इस लम्बे–चौड़े आकाश में वह ही इसकी हर प्रकार से व्यवस्था–संचालन करता है।

यही बात उपनिषदकार ने इन शब्दों में कही है–

यतो वा इमानि भूतानिजायन्ते। येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसं विशन्ति–तैत्तिकीय 3,1,2

इसी भाव को वेदान्त दर्शन में इन शब्दों द्वारा समझाया है– जन्माद्यस्य यतः 1,1,2 गीताकार ने इस तथ्य को इस प्रकार से गाया है–यतः प्रवृत्ति भूॅतानां, येन सर्वमिदं ततम्। 18,46 इन शास्त्रों के प्रमाणों से यह स्वतः सिद्ध हो जाता है, कि ईश्वर की पहचान वही ही है। जोकि आपने

हां, यह जो आपने अभी ईश्वर की कसौटी बड़े दावे के साथ कही है। क्या यह परिभाषा पूरी तरह से आपके ठाकुर जी पर लागू होती है। आपके द्वारा माने जाने वाले ठाकुर जी क्या इस जगत को बना, चला और पाल सकते हैं? इस पर पहले तो पहलवान सोच में पड़ गया और फिर विनम्र होकर बोला, कि महाराज! आपका अभिप्राय हर प्रकार से ठीक ही है, कि मन्दिर के ठाकुर जी तो यह नहीं कर सकते। ईश्वर वाली कसौटी मन्दिर वाली मूर्ति पर लागू नहीं होती? ठाकुर जी तो पूरी तरह से स्वयं ही पुजारी और भक्तों पर निर्भर हैं।

बताई है।

हां, यह जो आपने अभी ईश्वर की कसौटी बड़े दावे के साथ कही है। क्या यह परिभाषा पूरी तरह से आपके ठाकुर जी पर लागू होती है। आपके द्वारा माने जाने वाले ठाकुर जी क्या इस जगत को बना, चला और पाल सकते हैं? इस पर पहले तो पहलवान सोच में पड़ गया और फिर विनम्र होकर बोला, कि महाराज! आपका अभिप्राय हर प्रकार से ठीक ही है, कि मन्दिर के ठाकुर जी तो यह नहीं कर सकते। ईश्वर वाली कसौटी मन्दिर वाली मूर्ति पर लागू नहीं होती? ठाकुर जी तो पूरी तरह से स्वयं ही पुजारी और भक्तों पर निर्भर हैं।

स्वामी जी महाराज! आपने तो मेरी आंखें ही खोल दीं। इसके लिए आपका बहुत–बहुत धन्यवाद। हां, मैं अपने बोलों और व्यवहार के लिए आपसे बार–बार क्षमा माँगता हूँ।

इस सारी बातचीत से स्वतः स्पष्ट हो जाता है, कि स्वामी जी जिससे वार्तालाप करते थे। उससे उसके अनुरूप चर्चा करते थे। तब जहाँ चर्चित विषय का ध्यान रखते थे, वहाँ मूल बात, वास्तविकता, असलियत को शास्त्रों के आधार पर सामने लाते थे।

2– ईश्वर की सत्ता– यह तो निश्चित बात है, कि यह संसार न आपने बनाया है और न ही मैंने रचा है। हम सबसे ऊपर एक ऐसी शक्ति है, जो इस अपार संसार का निर्माण करती है। उसी की व्यवस्था में ही यह सारा ब्रह्माण्ड चल रहा है। ये जो बड़े–बड़े सूर्य–चन्द्र आदि लोक–लोकान्तर, ग्रह–नक्षत्र और वायु, जल जैसे भौतिक पदार्थ हैं। सभी के सभी उसके नियमों में बंधे हुए हैं। ये सारे एक व्यवस्थित व्यवस्था में अपना–अपना कार्य कर रहे हैं। यह व्यवस्था सभी के लिए समान रूप से सर्वत्र चल रही है। कोई भी इस व्यवस्था से इधर–उधर नहीं जा सकता है। सभी उस महान सत्ता के नियमों में बंधे हुए हैं। तभी तो मेरे–आपके न चाहते हुए भी डाक्टरों के देखते–देखते मौत का चक्र चलता है। अतः जो सारे जगत का निर्माता और चालक है, वही ईश्वर है।

ईश्वर के इन महान कार्यों और उसकी एक से बढ़कर एक अद्‌भुत देनों की दृष्टि से जहाँ उसके प्रति सदा कृतज्ञ रहना चाहिए। अर्थात उस महान परमपिता के उपकारों को स्वीकार करना चाहिए, वहाँ उस अमर सत्ता के प्रति समर्पण बुद्धि रखने से मनुष्य अहंकार के मद में अन्धा होकर बे–सिर–पैर के कार्य नहीं करता प्रायः अहंकार के कारण ही व्यक्ति दूसरों से अन्याय या उन पर अत्याचार करता है। जिसका परिणाम 'अहंकारया सो मारया' 'गर्वाचे घर खाली' ही होता है। व्यक्ति को गर्व, अहंकार तभी आता है, जब वह अपने ऊपर किसी शक्ति को अनुभव नहीं करता। तब वह अपने आपको सर्वे–सर्वा समझ कर मन–मानी करता है।

3–आस्तिकता– उस महान शक्ति के प्रति स्वीकृति भावना, उसके नियमों को मानना, समझने–पालने की भावना रखना, उसके प्रति कृतज्ञ रहना अर्थात उसके द्वारा होने वाले कार्यों को स्वीकारना, आदर भाव देना ही आस्तिक भावना है। जैसे हम किसी वाहन, यन्त्र की व्यवस्था, नियम को मानकर यान, यन्त्र का लाभ उठा कर स्वयं सुखी रहते हैं। इस प्रकार यान, यन्त्र के प्रयोग को सफल, सार्थक सिद्ध करते हैं। ऐसे ही ईश्वर की रची रचनाओं (सूर्य, वायु आदि) की व्यवस्था को मानकर, पालकर अपनी आस्तिकता अर्थात उनकी स्वीकृति को सार्थक बनाते हैं। रचनाकार की रचना के यथार्थ रूप को प्रत्यक्ष मानकर ही उस को हम स्वीकृति देते हैं। वस्तुतः किसी को व्यवहार में लाकर ही उसको आदर देते हैं। उसकी सत्ता (स्थिति, संचालना) को हाँ कहकर अपनी आस्तिकता दर्शाते हैं। जैसे किसी रचना (यन्त्र) की स्थितियों, व्यवस्थाओं को स्वीकार करना, मानना उसकी दृष्टि से आस्तिकता=हाँ–कहना, आदर देना है। ऐसे ही जग तथा जीवन रूपी सबसे अनोखे यन्त्र की व्यावहारिकता, वास्तविकता को वह जैसी है–वैसा ही (याथातथ्य, यथार्थ रूप में) स्वीकारना ही जगतकर्ता, जीवनदाता की दृष्टि से आस्तिकता होनी चाहिए।

अतः प्रत्यक्ष रूप से यही उसकी उपासना (=निकटता, तदनुरूपता), पूजा, भक्ति है। इन शब्दों की शब्दार्थता (प्रकृति–प्रत्यय पर निर्भर होना) यौगिकता, चरितार्थता से भी यही बात सामने आती है। उपासना द्वारा वस्तुतः व्यक्ति इष्ट के प्रति कृतज्ञ होकर उसके प्रति आत्मीयता प्रकट करता है। तब वह स्वतः सर्वनियामक के नियमों को मानता है। यही उससे जुड़ने का प्रत्यक्ष प्रयास है।

भक्ति, उपासना द्वारा उस महान सत्ता से अपना सम्बन्ध जोड़ने पर व्यक्ति में आत्मिक बल आता है। जिससे वह संकटों, विपरीत परिस्थितियों में घबराता नहीं है। इससे आस्तिक के हृदय में श्रद्धा, पवित्रता, प्रसन्नता, उदारता, विनम्रता, शीतलता, सन्तुष्टि की भावना उभरती है, जड़ जमाती है।

आस्तिक भावना जीवन के लिए अत्यन्त अनिवार्य और बहुत ही कल्याणकारी है। ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने से व्यक्ति में धर्म के प्रति श्रद्धा, विश्वास बना रहता है। इस का सब से बड़ा लाभ यह है, कि जब ईश्वर भक्त ईश्वर की कर्मफल व्यवस्था को मानता है, तो उसका व्यवस्था पर विश्वास बना रहता है। इससे पुण्य कर्मों का फल एकदम मिलता हुआ दिखाई न देने पर भी भक्त ईश्वर के विश्वास पर पुण्य=अच्छाई करता रहता है। दूसरी ओर पापों=बुराइयों का फल, दण्ड एकदम मिलता हुआ न दिखाई देने पर भी एक आस्तिक ईश्वर की व्यवस्था के भय से पाप कर्मों से बचा रहता है।

ईश्वर पर विश्वास अर्थात ईश्वर को स्वीकार करने से मनुष्य की अनाथता दूर होती है। तब वह अपने आप को अकेला, असुरक्षित नहीं मानता। ऐसी स्थिति में व्यक्ति उस महान शक्ति को अपना मित्र,

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका:–योग में मन के सभी विचारों को पूरी तरह से नहीं रोक पाते हैं तो क्या उन विचारों को रोककर दूसरी ओर लगाना है। मार्गदर्शन कीजिए?

समाधान– जी हाँ योगाभ्यास में मन के सारे विचारों को नहीं रोकना है। कुछ विचार रोक सकते हैं, कुछ चालू रखते हैं। संसार के विचारों को बंद कर देना है और ईश्वर के विचारों को चालू रखना है। सारे विचारों को बिल्कुल बंद कर दें, विचारशून्य हो जाएँ। यह शुरू में बहुत कठिन है। सांसारिक विचारों को बंद कर दीजिए। खाना–पीना, घूमना–फिरना, शापिंग वगैरेह के सारे विचार बंद। ईश्वर के विचार को मन में चालू रखिए। तो इसका नाम–योग है। तो यह कर सकते हैं। है तो यह भी कठिन अभ्यास करेंगे तो यह हो जाएगा।

शंका:–ऐसा हम सुनते हैं, कि सत्य आचरण करने वालों से ईश्वर प्रसन्न होता है। किन्तु देखा गया है कि असामाजिक तत्त्व, असत्य आचरण करने वाले लोग ज्यादा सुखी हैं। आध्यात्मिक सत्य आचरण करने वाले लोगों को कष्ट अधिक सहन करना पड़ता है। ऐसे समय में ईश्वर के अस्तित्त्व पर संदेह हो जाता है। मोक्ष मिलेगा, जब मिलेगा, तब मिलेगा। लेकिन आज तो भगवान के न्याय कार्य के ऊपर से विश्वास उठ जाता है। कृपया इस स्थिति पर मार्गदर्शन करें?

समाधान– हम देखते हैं कि सच्चा आदमी, ईमानदार आदमी दुनिया में ज्यादा मार खा रहा है। उसको धन भी कम मिलता है, सम्मान भी कम मिलता है। गालियाँ भी पड़ती है, झूठे आरोप भी लगते हैं। और ऑफिस में लोग उसको परेशान भी खूब करते हैं। गंदे व्यापार में भी उसकी पिटाई ज्यादा होती है। हम यह भी देखते हैं, कि जो बेईमान है, छली–कपटी, धोखेबाज चालाक आदमी है, वह दूसरों से छीन–झपट के खा जाता है। और खूब पैसे वाला, संपन्न दिखता है, सुखी दिखता है। तो ऐसी स्थिति में ईश्वर के अस्तित्त्व पर शंका तो होती है।

उसका समाधान यह है, कि एक बार तो मार खानी पड़ेगी। चाहे इस जन्म में खाओ या अगले जन्म में खाओ। इस जन्म में हम मनुष्य बनकर इन संसार के लोगों की मार खा लेंगे। अगर ईमानदारी से चलेंगे, तो संसार के लोगों की मार खायेंगे। पर ईश्वर की मार से बच जायेंगे। आगे जन्म बढ़िया हो जायेगा। यदि बेईमानी करेंगे, छल–कपट करेंगे, धोखेबाजी करेंगे तो लोगों से शायद कम मार खायेंगे, लेकिन फिर आगे चलकर ईश्वर की मार खानी पड़ेगी। हमें सूअर, गधा, कुत्ता, बिल्ली बनना पड़ेगा।

अब आप सोच लीजिए, कि दोनों में से कौन सी मार खानी है। कोई एक तो खानी पड़ेगी। आप ईमानादारी से चलकर लोगों की मार खा लें, या बेईमानी करके ईश्वर की मार खा लें। विचारणीय यह है कि कौन सी मार सस्ती है।

विचारेंगे तो पता चलेगा कि–लोंगों की मार खानी सस्ती है। इसीलिए ईमानदारी से चलना चाहिए। लोग थोड़ा परेशान करेंगे। उसको सहन करने के तीन शब्द आपको दे दिये–कोई बात नहीं। इससे आपको शक्ति मिलेगी और आप लोगों की मार खा लेंगे, आसानी से सह लेंगे। पर इसके परिणाम स्वरुप आपका अगला जन्म अच्छा होगा। आगे अच्छे मनुष्य बनेंगे और ऐसे पुरुषार्थ कर–कर के मोक्ष भी प्राप्त हो जाएगा। इसलिए ईमानदारी से चलना ज्यादा अच्छा है।

जो बेईमानी करते हैं, वे बड़े सुखी दिखते हैं। वे केवल सुखी दिखते हैं, लेकिन सुखी हैं नहीं। ऊपर–ऊपर से सुखी दिखते हैं केवल! हम बड़े–बड़े करोड़ पति, अरब पति, सेठों के यहाँ पर भी जाते हैं और वो स्वयं हाथ जोड़कर बोलते हैं, कि महाराज जी! आप बहुत सुखी हो, हम बहुत दुखी है।' तो वे सुखी केवल बाहर से दिखते हैं। अंदर से बेचारे बहुत दु:खी हैं। उनके मन में हमारे प्रति श्रद्धा है, इसलिए अपने दिल की बात वे सबको नहीं बताते, हमको बताते है। वे आपको नहीं बतायेंगे। कुछ पूर्वजन्म के भी कर्म है, इस जन्म के भी है, दोनों मिलजुल कर के वे इतने संपन्न हो जाते हैं। परन्तु वे पैसे के कारण बहुत सुखी नहीं है। आपको केवल सुखी दिखते हैं।

सुख तो अंदर की (मन की) चीज है, बाहर की चीज नहीं है। बाहर तो आपको मोटर–गाड़ी दिखती है, धन दिखता है, भवन दिखता है, सोना–चांदी दिखता है। बाहर की चीजें अच्छी– अच्छी चमकीली दिखती हैं। उन चीजों से कोई सुख नहीं होता है।

देखिए, हम जंगल में रहते हैं, यह मकान भी हमारा नहीं है। यह संसार वालों का है। हम तो यहाँ मेहमान के तौर पर रहते हैं। हमारे पास कुछ नहीं है। कोई बैंक–बैलेंस नहीं, कोई व्यक्तिगत संपत्ति नहीं। और आप बताइये, हम कितने सुखी हैं। खूब आनंद से रहते हैं, विद्या पढ़ते हैं, योगाभ्यास करते हैं, समाज की सेवा करते हैं, निष्काम भाव से करते हैं, खूब भगवान हमको सुख देता है। जो भी संपत्ति है, सब समाज की है। और भगवान की है फिर भी हम बहुत सुखी हैं। उनके पास खूब संपत्ति है, फिर भी बेचारे दु:खी हैं। सिद्धांन्त की बात यह है कि–केवल संपत्ति होने से कोई सुखी नहीं होता। सुखी होता है–विद्या से, सत्संग से, वैराग्य से, आचरण से। इन चीजों से व्यक्ति सुखी होता है। तो वे लोग सुखी जरूर दिखते हैं, हैं नहीं।

एक बात इसमें आई है, कि कोई अच्छा ईमानदार आदमी दुखी होता है तो ईश्वर के न्यायकारी होने पर शंका होती है। इसका उत्तर यह है, कि जो अच्छे लोग मेहनत और ईमानदारी से काम कर रहे हैं, उनको जो दु:ख भोगने पड़ रहे हैं, वे दुख उनको ईश्वर दे रहा है या समाज के लोग दे रहे हैं। यदि फिर समाज के लोग अन्यायकारी हुये, ईश्वर कहाँ अन्यायकारी हुआ। ईश्वर पर शंका क्यों? ईश्वर ने थोड़े ही किया अन्याय। वे अन्याय तो समाज के लोगों ने किया। उसका दण्ड उनको मिलेगा। ईश्वर तो पूर्ण न्यायकारी है। वे तो जब फल देता है, ठीक न्याय से ही देता है। अन्याय का जो रूप दिख रहा है, यह तो ईश्वर का किया हुआ है ही नहीं। फिर ईश्वर पर हम क्यों शंका करें। इसीलिए ईश्वर पर शंका नहीं करनी चाहिए। संसार के प्राणियों को देखिए, पता चल जाता है। ईश्वर ने कैसा बढ़िया न्याय किया। जो अच्छे काम करते हैं, उनको मनुष्य बनाता है। और जो बुरे काम करते हैं, उनको कौआ, कबूतर, गिलहरी, सूअर, बंदर इत्यादि बना देता है।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

☞ *पृष्ठ 04 का शेष*

आस्तिक बुद्धि...

रक्षक, सहायक अनुभव करता है। इससे आस्तिक में धैर्य, उत्साह और आत्मबल आता है। अनेक महापुरूषों, सन्तों, भक्तों का जीवन इस बात का साक्षी है, कि वे विपरीत परिस्थिति में भी अडोल, अडिग रहें, घबराये नहीं। अतः ईश्वर–उपासना, प्रभु–भक्ति का भाव है, कि अपने आपको महान शक्ति के साथ जोड़ना। अपना निकट से निकट सम्बन्ध अनुभव करना। एक शिशु जैसे निश्छल होकर पूर्णतः अपने आप को समर्पित करता है। वैसे ही भक्त अपने आपको प्रभु के प्रति सौंप दे।

4–ईश्वर–अनुभूति– कण–कण में समाया हुआ ईश्वर सब स्थानों पर सदा रहता है। ऐसे ईश्वर को मानने वाले सारे भक्त, सन्त, शास्त्रविद उस जगतकर्ता, संसार संचालक परमात्मा की अनुभूति अपने हृदय में ही करते हैं। ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करने वालों की यह पक्की धारणा है, कि निर्विकार, न्यायकारी परमात्मा जीवों को अपने–अपने कर्म के अनुरूप ही अनेक प्रकार के देहों (चोलों) से जोड़ता है। इन अनन्त शरीरों के रूप में ही यह संसार है। इस सब का सृष्टा, संचालक, व्यवस्थापक ईश्वर ही है।

ऐसे ईश्वर की अनुभूति कराते हुए ही कहा है–

'हर जगह मौजूद है,
पर नजर आता नहीं।
योग साधना के बिना,
उसको कोई पाता नहीं।।

हाँ, योग की साधना को स्पष्ट करते हुए ही सुझाया है–

'आँख–कान–मुख मूँद कर,
नाम निरन्जन लेय।
अन्दर के पट तब खुलें,
बाहर के पट देय।।'

जब कोई किसी गम्भीर, अभौतिक वस्तु के सम्बन्ध में सोचता है, ध्यान लगाता है। तब स्वाभाविक रूप से दूसरी ओर (भौतिक) से नाता टूट जाता है। निरंजन, अभौतिक रूप से जुड़ने के लिए पहले स्थूल, भौतिक से अपने ध्यान को हटाना ही होगा। तभी अभौतिक का चिन्तन, मनन हो सकता है। जैसे कि गहरी नींद में जाते ही अन्य सबसे नाता स्वतः टूट जाता है।

इसका एक सरल सा प्राथमिक रूप यह हो सकता है, कि पूर्व चर्चित ईश्वर के स्वरूप के बोधक–ओम् नाम को लम्बी सांस के साथ ओ.......म् की गुञ्जार करें और मन में ओम् वाच्य (पुकारे जाने वाले) ईश्वर का चिन्तन करें। इस प्रकार बीच–बीच में थोड़ा रूककर पुनः पुनः ओम. .....म् की गुञ्जार करें।

182, शालीमार नगर, होशियापुर
सम्पर्क : 9464064398

सरमा पणि संवाद–एक विवेचन

● उदयन आर्य

विश्व के पुस्तकालय में उपलब्ध प्राचीनतम ग्रंथ वेद है। प्राचीन भारतीय ऋषियों का मन्तव्य है कि सृष्टि के आदि में परमपिता परमात्मा ने ऋषियों के माध्यम से यह ज्ञान मनुष्यों को प्रदान किया। यह वेद परमपिता के निःश्वास के समान हैं। इन ऋचाओं का मुख्य विषय स्तुति है और इस स्तुति के माध्यम से ऋषि परमात्मा के गुणों को अपने अन्दर धारण करने का प्रयास करते हैं। मंगलेच्छुक मनुष्य परम पवित्र इन ऋचाओं का अध्ययन करता है और स्वयं परमात्मा से ऋचाओं में स्थापित रस का आनन्द लेता है।[1]

कालान्तर में जब वेदों का साक्षात् दर्शन कठिन हो गया तो अन्य ग्रंथ लिखे गये।[2] बह्मा का (वेद) व्याख्यान ही ब्राह्मण कहलाता है। इन ब्राह्मणों में वेदों के भावों को यागों में विनियोग की साथ साथ मंत्रों के व्याख्या को रोचक बनाने के लिए नाटक का रूप दिया गया और इन नाटकों को जन–जन तक पहुँचाने के लिए आख्यान के रूप में व्याख्यायें की गईं।

सरमा तथा पणि संवाद

सरमा शब्द निर्वचन प्रसंग में उद्धृत ऋग्वेद 10.108.1 के व्याख्यान में प्राप्त होता है। आचार्य यास्क का कथन है कि इन्द्र द्वारा प्रहित देवशुनी सरमा ने पणियों से संवाद किया।[3] पणियों ने देवों की गाय चुरा ली थी। इन्द्र ने सरमा को गवान्वेषण के लिए भेजा था। यह एक प्रसिद्ध आख्यान है।

आचार्य यास्क द्वारा सरमा माध्यमिक देवताओं में पठित है वे उसे शीघ्रगामिनी होने से सरमा मानते हैं। वस्तुतः मैत्रायणी संहिता के अनुसार भी सरमा वाक् ही है।[4] गाया रश्मियाँ हैं।[5] इस प्रकार यह आख्यान सूर्य रश्मियों के अन्वेषण का आलंकारिक वर्णन है। निरुक्त शास्त्र के अनुसार **''ऋषेः दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता''**[6] अर्थात् सब जगत् के प्रेरक परमात्मा अदृष्ट अर्थों को आख्यान के माध्याम से उपदिष्ट करते हैं। वेदार्थ परम्परा के अनुसार मंत्रों के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं। आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक तीनों दृष्टियों के इस सूक्त से पर्यालोचन से सिद्ध होता है कि यह सूक्त किन्ही विशेष अर्थो को कहता है। विश्लेषण के लिए इस सम्वाद में प्रयुक्त शब्दों के अर्थों को व्याकरण और निरुक्त के अनुसार समझने की आवश्यकता है। क्रमशः एक एक शब्द पर विचार करते हैं।

पणयः ऋग्वेद में 16 बार प्रयुक्त बहुवचनान्त पणयः शब्द तथा चार बार एकतचनान्त पणि शब्द का प्रयोग है। पणि शब्द **पण् व्यवहारे स्तुतौ च** धातु से अच् प्रत्यय करके पुनः मतुवर्थ में ''**अत इनिठनौ** '' से इति प्रत्यय करके सिद्ध होता है। **यः पणते व्यवहरति स्तौति स पणिः** अथवा कर्मवाच्य में **पण्यते व्यवह्रियते सा पणिः** ''। अर्थात् जिसके साथ हमारा व्यवहार होता है और जिसके बिना हमारा जीवन व्यवहार नहीं चल सकता है उसे पणि कहते हैं। इस प्रकार यह पणि शब्द मेघ का वाचक अथवा वायु का वाचक है। इस पणि को वृत्र अथवा 'असुर' कहा गया है। आचार्य यास्क ने **वृत्र वृणोतेः** कहकर बताया जो आवरण करता है ढक लेता है उसे वृत्र कहते हैं। वही वृत्र वरण कर लेने वाला मेघ जब वारिदान करता है तब देव कहलाता है। किन्तु जब जल को सुरक्षित कर लेता है बरसने नहीं देता, तब वह असुर कहलाता है। इसकी व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं **'राति ददाति इति रः सु शोभनं राति ददाति इति सुरः नु सुरः असुरः'** अर्थात् इस यौगिक अर्थ के अनुसार असुर शब्द पणि के प्रसंग में अवरोधक मेघ है।

(2) इन्द्रः निरुक्तकार यास्क के अनुसार' **इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति इति इन्द्रः, इराम जलानां आनेता इन्द्रः** = सूर्य। इसी तरह आधिदैविक अर्थ में इन्द्र सूर्य का वाचक हैं आध्यात्मिक अर्थ में इन्द्र जीवात्मा और परमात्मा को कहते हैं। इन्द्र सूर्य की गावः = रश्मयः गावः इति रश्मि नामसु पठितम् (निरुक्त)। अब इस कथा का भाव हुआ कि इन्द्र = सूर्य की गावः, रश्मियों को जल न देने वाले असुरों = मेघों ने आच्छन्न कर लिया है। इन्द्र के बार–बार सूचना देने पर भी पणियों ने इन्द्र की गायों को नहीं छोड़ा और जिससे प्रजा व्याकुल होने लगी, तब इन्द्र ने दूती। भेजी दूती को यहाँ पर देवशुनी शर्मा कहा गया है। सरति गच्छती सर्वत्र इति शरमा, देवानां सुनी सुचिका दूति वा देवशुनी, जो तेजी से गति करती है और देवों की दिव्यता की सूचना देती है वह विद्युत् ही यहाँ देवशुनी शरमा कही गई है। इस प्रकार देवशुनी बादल की गडगड़ाहट रूपी ध्वनि के साथ पणियों से संवाद करती है और कहती है कि हामारे राजा की गौओं को छोड़ दो नहीं तो हमारा बलवान राजा दण्ड देगा। पणियों ने देवशुनी की बात नहीं मानी, तब इन्द्र ने वज्र प्रहार कर अर्थात् वायु के प्रहार के माध्यम से पणियों को मारकर धरती पर सुला दिया और अपनी गायों को मुक्त करा लिया। सारा संसार वृष्टि से सुखी हुआ और सूर्य की किरणें चारों ओर फैल गईं। वैदिक आख्यानों को सामान्य अर्थो में ग्रहण न करके विशिष्ट एवं यौगिक अर्थो में ही ग्रहण करना चाहिए। शब्दों के यौगिक अर्थो के आलोक में इन आख्यानों को देखने पर वेदार्थ की उत्तम आदर्श नव्य और दिव्य प्रक्रिया का ज्ञान होता है।

अन्त में प्रश्न आता है कि वैदिक आख्यानों की वास्तविकता स्वीकारणीय है अथवा अस्वीकारणीय? तो इसका संक्षेप में उत्तर यह है कि यदि रूपकालंकार की दृष्टि से वे आख्यान मंत्रार्थ से संगत होते हैं तो वे आलंकारिक रूप से अथवा शाश्वत घटित होने वाली घटनाओं के ऐतिहासिक शैली के चित्रण के रूप में ग्राह्य एवं स्वीकारणीय हैं परन्तु यदि मन्त्र सूक्त गत संवादादि का संबंध यदि किसी अवरकालिक पुराण महाभारतादि ग्रन्थों में वर्णित अनित्य इतिहास से बलात् जोड़ा गया है और वह गठजोड़ असंगत और अटपटा लग रहा है तो उसे वास्तविक रूप में स्वीकार न करके सर्वथा अवास्तविक ही मानना चाहिए। **तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च**[7], तथा **नाम च धातुजमाह निरुक्ते** व्याकरणे शकटस्य च तोकम्[8] के धातुज्ञ वैयाकरणों में विशेषः शाकटायनाचार्य तथा सम्पूर्ण नैरुवत समुदाय वेद के शब्दों को धातुज अर्थात् यौगिक मानते हैं। इस दृष्टि से वेद मन्त्रों से कोई रूढ़ अर्थ या मानवीय अनित्य इतिहास के वर्णन की सम्भावना वहाँ नहीं हो सकती है। अतः सारमेयाश्वानी, यम–यमी, अश्विनी, देवापि, सरमा, पणि विश्वाममित्र, ग्रत्समद इन्द्र आदि पदों से किसी लौकिक कथानक की कल्पना वेदों में करना अन्धाधुन्ध है। अतः ऐसे शब्दों और उनसे अभिव्यक्त होने वाले कथोपकथन से किसी अन्य प्राकृतिक व वैज्ञानिक तथ्य का अनुसन्धान करना ही युक्ति संगत होगा। यदि कोई आख्यान मन्त्रार्थ को स्पष्ट करने के लिए कल्पित किये गये हैं तो उनको आलंकारिक दृष्टि से संगत मानना चहिए। मन्त्रों में उपमा, रूपक, श्लेषादि अलंकारों का प्रयोग प्राचीन और अर्वाचीन प्रायः सभी भाष्यकारों ने स्वीकार किया। वैदिक आख्यानों में प्राकृतिकता, अलौकिकता आदि का वर्णन मिलता है। उर्वशी आख्यान में मेघों का और विद्युत् का, सरमा, पणि आख्यान में विद्युत् और अवर्षणशील मेघों का, इन्द्र वृत्र आख्यान में विद्युत और मेघ के युद्ध का वर्णन है। वैदिक ग्रन्थों ने इनका प्राकृतिक अर्थ किया है। उपरिगत विवेचन से यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि मन्त्रगत इतिहास अथवा आख्यान तत्वतः औपचारिक, अर्थवादात्मक उपमार्थक अथवा आलंकारिक हैं, आधुनिक अर्थ में ऐतिहासिक नहीं। अतः उनके सम्यक् अवगम एवं विश्लेषण में अतीव सावधानी तथा चिन्तन की अपेक्षा है।

पादटिप्पणी

1. यः पावमानीरध्येतृषिभिः सम्भूत रसम्– ऋग्वेद 9.67.31
2. साक्षात्कृतधर्माण ऋषयों बभूवुः तेऽवरेभ्योऽसाक्षात् कृत धर्मभ्य उपदेशनं मंत्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्म ग्रहणाय ग्रन्थं समाम्नासिषु वेदं च वेदांगानि च। निरुक्त 1.20
3. निरुक्त 11.25 देवशुनीन्द्रेण प्रहिता पणिभिरसुरैः समूढ इत्याख्यानम्।
4. वाग् वै सरमा
5. निरुक्त 2.7 सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यते।
6. निरुक्त 10.46
7. निरुक्त 1/12
8. पातंजल महाभाष्य 3.31

दयानन्द वैदिक अध्ययन पीठ
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

(फार्म–4 नियम 8 देखिये)

1.	प्रकाशन का स्थान	:	आर्य समाज कार्यालय, आर्य समाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001
2.	प्रकाशन–अवधि	:	साप्ताहिक
3.	मुद्रक का नाम	:	एस. के. शर्मा
4.	क्या भारत का नागरिक है?	:	हाँ
5.	मुद्रक का पता	:	आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001
6.	प्रकाशक का नाम	:	एस के शर्मा
7.	क्या भारत का नागरिक है?	:	हाँ
8.	प्रकाशक का पता	:	आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001
9.	सम्पादक का नाम	:	पूनम सूरी
10.	क्या भारत का नागरिक	:	हाँ
11	सम्पादक का पता	:	आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001
	उन सभी व्यक्तियों के नाम पते जो समाचार–पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत के हिस्सेदार हों।	:	आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001

मैं एस. के. शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।
दिनांक 16.03.2016

एस के शर्मा
प्रकाशक

वेदों की विवेचना : एक प्रेरणाप्रद व उपयोगी मीमांसा

● देवनारायण भारद्वाज

कविराज पं. ओमप्रकाश शर्मा 'विकल' अपने सहयोगी पं. रामकुमार शर्मा के साथ मेरे पास आये। सेवानिवृत्त आई.ए.एस. श्री के. एम. सन्त द्वारा लिखित पुस्तक 'वेदों की विवेचना' मुझे पकड़ा दी। कविराज के नाम के साथ उपनाम 'विकल' तो वर्षों से जुड़ा है, पर इतना विकल उनको हमने कभी नहीं देखा, क्योंकि प्रस्तुत पुस्तक का नाम तो अवश्य 'वेदों की विवेचना' है, किन्तु वह वास्तव में विवेचना नहीं अवमानना है। एक शेर जब बूढ़ा होने लगा तो उसे अपनी शक्ति पर तो सन्देह होने लगा। उसे अपने जंगल के राजा होने पर भी शंका होने लगी। एक दिन वह सब पशुओं से पूछता फिर रहा था–बता लोमड़ी, बता खरगोश, बता सियार, बता हिरण–जंगल का राजा कौन है? सभी ने उत्तर दिया–आप ही हैं महाराज–और कौन? इतना आश्वस्त होकर वह हाथी के समीप गया और उसकी सूंड़ पकड़कर बोला–बता जंगल का राजा कौन? हाथी ने उत्तर को क्रियात्मक कर दिया। उसने शेर को सूंड़ से उठाकर दूर पटक दिया। शेर अपनी झेंप मिटाते हुए कराहते–कराहते बोला–यदि उत्तर नहीं पता था तो पहले ही कह देते।

एक अन्ध विद्यालय के छात्र अपने शिक्षक के साथ महानगर में पहुँचे। टहलते हुए शिक्षक को एक उद्यान में हाथी की विशालकाय मूर्ति दिखाई दी। शिक्षक ने उस जन्मान्ध शिष्यों से पूछा–आम लोगों को हाथी के विषय में जानकारी है? उन्होंने कहा नाम तो सुना है, पर वह कैसा होता है–हम लोगों को पता नहीं। शिक्षक ने एक–एक कर अन्धे शिष्यों को हाथी की मूर्ति के पास भेजा। वे हाथ फेरकर लौट आये। चारों शिष्यों ने हर्षपूर्वक बताया कि गुरूजी हाथों से स्पर्श करके हाथी देख लिया। जिसने उसके पेट पर हाथ फेरा था, उसने चबूतरे के समान, जिसने कान पकड़े थे, उसने सूप के समान, जिसने सूंड़ पकड़ी थी उसने मूसल के समान और जिसने पैर पकड़े थे, उसने खम्भे के समान हाथी बता दिया। पर शिक्षक जो नेत्रों से देख सकते थे–उन्हें ही वह सम्पूर्ण हाथी की मूर्ति दिखाई दे रही थी।

उपर्युक्त दृष्टान्त 'विवेचना एवं अवमानना' शब्दों के अन्तर को स्पष्ट करता है। यदि शब्दकोश को ही देख लिया जाता तो पता चल जाता–'विवेचना' का अर्थ है ''सदसत् का निर्णय, मीमांसा, अनुसंधान पूर्वक पूर्ण परीक्षण'' तथा अवमानना का अर्थ है– ''अवज्ञा, अपमान, तिरस्कार और मूल्य ठीक प्रकार न आंकना।'' यदि किसी से कहा जाये मानव शरीर की विवेचना करो। वह मानव के सम्पूर्ण शरीर को छोड़कर केवल उसके गुप्तांगों की ही चर्चा करता रहे, तो यह उसकी विवेचना नहीं अवमानना ही है। इस तथाकथित सभ्यता के युग में भी जब किसी मनुष्य को अपमानित करना होता है, तो सामान्य जन उसे गालियाँ देते हैं जो घुमा फिराकर अधिकांश गुप्तांगों से ही सम्बन्धित होती हैं। प्रसंगगत पुस्तक में लेखक ने ऐसे ही सन्दर्भों का उल्लेख किया है। इसके कथ्य की चर्चा करने से पहले वेद के महत्व को समझने की प्रक्रिया जान लेते हैं। महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के विश्व कल्याणकारी दस नियमों में सर्वप्रथम नियम में कहा है– ''सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।'' तीसरे नियम में कहा है– ''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।'' इससे स्पष्ट है कि वेद ईश्वरीय वाणी है और इनमें मानवीय उपयोग के सर्वाङ्गीण ज्ञान का वर्णन है। वेद को समझने के लिए और इसके परम धर्म का पालन हेतु मनुष्य का 'आर्य' होना आवश्यक है। जाति या वर्ग से आर्य नहीं प्रत्युत श्रेष्ठ गुण, कर्म स्वभाव से आर्य होना चाहिए। इसके लिए भगवान बुद्ध ने चार आर्य सत्य एवं अष्टाङ्गिक मार्ग का बोध प्रदान किया है, जो 'सम्यक दृष्टि' से प्रारम्भ होता है।

यदि महात्मा बुद्ध के प्रथम निर्देश 'सम्यक् दृष्टि' का प्रयोग करते हैं तो सभी बातें हमारे सम्मुख सुस्पष्ट हो जाती हैं। वेद परमेश्वर का छन्दोबद्ध काव्य है। जो अभिधा, व्यंजना, लक्षणा, उपमा, प्रत्याभास, वाचकलुप्तोमालंकार आदि को ध्यान में रखकर समझाना पड़ता है। उदाहरणार्थ यजुर्वेद (17।91) में एक ऐसे बैल की चर्चा है, जिसके चार सींग, तीन पैर, दो सिर, सात हाथ हैं, वह तीन प्रकार से बँधा है। संसार में ऐसा तो कोई बैल नहीं है। वह वृषभ (बैल) 'यज्ञपुरुष' एवं 'शब्द' है। शब्द के नाम, क्रियापद, उपसर्ग और निपात ये चार सींग हैं। भूत, भविष्यत् और वर्तमान इसके तीन पैर हैं। इसके प्रभु प्रदत्त वैदिक शब्द नित्य तथा मनुष्य द्वारा प्रयुक्त वैश्विक शब्द इसके दो सिर हैं। शब्द की सात विभक्तियाँ या कारक इसके सात हाथ हैं। एकवचन, द्विवचन और बहुवचन तीन से बँधा है। इस प्रकार वेद के मन्त्र ज्ञानपूर्वक मनन करने से ही हमारा त्राण करते हैं। हिन्दी भाषा में भी कही गयी कहावतों के शब्द कुछ और अर्थ कुछ होते हैं। स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी, मुख्यमन्त्री एवं राज्यपाल प्रख्यात प्रकाण्ड विद्वान् डॉ. श्री सम्पूर्णानन्द ने कारावास के समय एक पुस्तक लिखी थी– 'ब्राह्मण सावधान' जिसका उद्धरण यहाँ पर उपयुक्त लगता है। "विद्या ब्राह्मण के पास आकर बोली–मैं तुम्हारी निधि हूँ, मेरी रक्षा करो। जो असूया, असंयमी, दुःशील हो उसके हाथ में मुझे न जाने दो, तभी मैं वीर्यवती रह सकती हूँ। किसी समझदार को इस पर आपत्ति न होनी चाहिए। कुपात्र के हाथ में जाने से विद्या नष्ट हो जाती है।"

एक अन्ध विद्यालय के छात्र अपने शिक्षक के साथ महानगर में पहुँचे। टहलते हुए शिक्षक को एक उद्यान में हाथी की विशालकाय मूर्ति दिखाई दी। शिक्षक ने उस जन्मान्ध शिष्यों से पूछा–आम लोगों को हाथी के विषय में जानकारी है? उन्होंने कहा नाम तो सुना है, पर वह कैसा होता है–हम लोगों को पता नहीं। शिक्षक ने एक–एक कर अन्धे शिष्यों को हाथी की मूर्ति के पास भेजा। वे हाथ फेरकर लौट आये। चारों शिष्यों ने हर्षपूर्वक बताया कि गुरूजी हाथों से स्पर्श करके हाथी देख लिया। जिसने उसके पेट पर हाथ फेरा था, उसने चबूतरे के समान, जिसने कान पकड़े थे, उसने सूप के समान, जिसने सूंड़ पकड़ी थी उसने मूसल के समान और जिसने पैर पकड़े थे, उसने खम्भे के समान हाथी बता दिया। पर शिक्षक जो नेत्रों से देख सकते थे–उन्हें ही वह सम्पूर्ण हाथी की मूर्ति दिखाई दे रही थी।

प्रस्तुत आलोच्य पुस्तक 'वेदों की विवेचना' की यही स्थिति है। पुस्तक लगभग 161 पृष्ठ 14 पाठों में विभाजित है। सभी पाठ निराधार और वेद तथा वैदिक संस्कृति की अवमानना की कुदृष्टि से लिखे गये हैं। वेदशास्त्रों के अध्ययन मनन से उनके भावों के गीत गायन करने वाले हम लोग–ऐसे विवादास्पद विषय के वर्णन से पीड़ा अनुभव करते हैं, किन्तु अग्रज कवि विकलजी और उनके सहवर्ती पं. रामकुमार शर्मा के आग्रह को ठुकराना भी उचित न समझते हुए, उनके द्वारा प्रदत्त पाठ–12 'वेदों में अश्लीलता' के प्रत्येक बिन्दु का समाधान आगे की पङ्क्तियों में प्रस्तुत करते हैं।

(अ) अश्लील आख्यान– यह वर्णन मानव शरीर विज्ञान से सम्बन्धित है। कुछ गुप्तांगों के अर्पण की चर्चा है। प्रथम बिन्दु से चारों बिन्दुओं को सकेंत रूप में समझा जा सकता है। गुदा व सर्प से आशय है–आन्त्र अंग सर्प की भाँति कुण्डली के आकार में गुदा से जुड़ा होता है। सर्प विष इसके रोगों को दूर करता है। सर्प विष इसके रोगों को दूर करता है। एक व्यक्ति को भयंकर उदरशूल रहता था। बहुत चिकित्सा करायी गयी। कोई लाभ नहीं हुआ। एक दिन उसने एक गन्ना चूस लिया। कुछ ही घण्टों के बाद उसकी पीड़ा समाप्त हो गई। उसकी चिकित्सा करने वाले वैद्य ने गन्ने के खेत का निरीक्षण किया। वहाँ उसने मृत सर्प के अंश देखे–पता चला वहीं की भूमि से वह विष रूपान्तरित होकर गन्ने में पहुँचा, और चूसने पर प्रतिक्रिया स्वरूप वह रोग मुक्त हो गया। एक पुरोहितजी ने एक बड़ी कॉलोनी में पानी की टंकी के नीचे यज्ञ कराया। पेड़ के ऊपर मधुमक्खियों का छत्ता था। पुरोहितजी व सहयोगियों को मधुमक्खियों ने कई स्थानों पर काट लिया। कान में भी काट लिया। दूसरे दिन से उनके कान के ऊपरी भाग में पीड़ा होने लगी। वर्षों बाद एक दूसरी नई कॉलोनी में पेड़ के नीचे यज्ञ हुआ। आयोजकों को पता नहीं था, वहाँ पर भी मुधमक्खियों ने भयंकर आक्रमण किया। कई लोगों को अस्पताल में जाकर चिकित्सा करानी पड़ी। पुरोहितजी के मुँह व कानों पर खूब काटा। कान की पीड़ा समाप्त हो गई। शरीर के अंगों व इन्हें अर्पण या सम्बद्ध करने वाले तत्त्वों के अन्वेषण से ही इस मन्त्र को समझा जा सकता है, जिसे आयुर्वेद ज्ञाता ही शोध कर बता सकता है।

(ब) अश्व संभोग–इस स्तम्भ में लेखक ने (1), (2), (3) अंश प्रस्तुत किए हैं। कहीं पर, पत्रिका सरिता का, कहीं पर महीधर के भाष्य का उल्लेख किया है। उन्हें इसके रूपक को समझना पड़ेगा। जब एक प्रजाति का पशु पुरुष दूसरी प्रजाति की पशुनारी से सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकता है, तब यह अश्व एवं स्त्री में कैसे सम्भव हो सकता है? पौराणिक पण्डितगण यजुर्वेद (23। 11) के इस मन्त्र को प्रायः हर धार्मिक कर्मकाण्ड में प्रयुक्त करते हैं–

गणानां त्वा गणपतिं्हवामहे

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

☞ पृष्ठ 07 का शेष

वेदों की विवेचना : एक...

प्रियाणां त्वा प्रियपतिᳪहवामहे निधीनां त्वा निधिपतिᳪहवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।।

इस मन्त्र का लेखक ने पत्रिका सरिता–मई (द्वितीय) अंक 1160 से पढ़कर अपनी पुस्तक में सन्दर्भित किया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने शताब्दी पूर्व ही महीधर के भाष्य में अश्व संभोग का खण्डन अपनी 'ऋग्वदादिभाष्य–भूमिका' पुस्तक में कर दिया था। जिसका वास्तविक भावार्थ यजुर्वेदादिभाष्य–भूमिका' पुस्तक में कर दिया था। जिसका वास्तविक भावार्थ यजुर्वेदानुसार यह है–"गणपति प्रभु का उपासक मैं ज्ञानेन्द्रिय आदि गणों का पति होॐ। प्रिय पति प्रभु का उपासक मैं सब का प्रिय बनूँ। निधिपति का उपासक मैं ज्ञान निधि का पति बनूँ। आपको मैं सबका निवास जानूँ। सारे संसार को गर्भ में धारण करने वाले आपकी ओर चलूँ। आप ही ब्रह्माण्ड जननी प्रकृति को गति देते हो, मुझे भी उत्तम गति प्राप्त कराइये।" यजुर्वेद अध्याय 23 के 11 एवं 20 वें मन्त्र में भावार्थ है कि प्रभु से मिलकर मैं प्रभु कृपा से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों को सिद्ध करूँ। प्रभु राजा व प्रजा को शक्तिशाली बनायें। राजा राष्ट्र में व्यभिचार को रोकने के लिए विलासी पुरुष को उल्टा लटकवा दें तथा राष्ट्र में व्यभिचार की हानियों एवं संयमों के लाभों का प्रचार करवायें, जिससे लोगों की मनोवृत्ति में परिवर्तन किया जा सके। इस बिन्दु पर अधिक समीक्षा करने की इसलिए आवश्यकता नहीं रह गई, क्योंकि लेखक ने यह उल्लेख करना उचित समझा है कि वेदों में श्लोक नहीं मन्त्र होते हैं। अन्य भाष्यकारों ने अश्लीलता का वर्णन नहीं किया, फिर लेखक ने इनमें अश्लीलता क्यों मान ली, क्या इसलिए कि उन्हें जानबूझकर वेदों की अवमानना करनी थी?

(स) स्त्री–पुरुष के लैंगिक सम्बन्धों में अश्लीलता–

यह सम्बन्ध विवाहित पति–पत्नी द्वारा एकान्त में किये जाने की परिपाटी सनातन काल से चली आ रही हैं, जब कोई इसका वर्णन सार्वजनिक करता है तब सबका सिर शर्म से झुक जाना स्वाभाविक है। लेखक महोदय ने ऋग्वेद 10। 74। 37 का वर्णन तो कर दिया, जिसमें स्त्री–पुरुष के गर्भाधान का वर्णन है, किन्तु उन्होंने इससे ठीक पूर्व 10। 75। 36 का ज्ञान नहीं किया, जिसमें वर–वधू के पाणिग्रहण (विवाह) का वर्णन है। पाणिग्रहण सौभाग्य के लिए है। पति प्रतिज्ञा करता है। वह स्त्री की इच्छाएँ पूरी करे उसे काई कष्ट न दे। सम्बन्ध बुढ़ापे तक स्थिर रखे। बीच में छोड़ा नहीं जा सकता, यह ईश्वर और विद्वानों का नियम है। इसी प्रकार ऋग्वेद 1।123।10 को लेखक महर्षि दयानन्द सरस्वती के भाष्य से पढ़ते तो उसका भावर्थ मिलता–"इस मन्त्र में उपमालंकार है जैसे विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्री पूरी विद्या, शिक्षा और अपने समान मनवाले पति को पाकर सुखी होती है वैसे ही और स्त्रियों को भी आचरण करना चाहिए।"

(द) लिंग उत्तेजना के उपाय–

लेखक ने न जाने किस भाष्यकार के भाष्य को पढ़कर अपने मन में अन्यथा धारणा बना ली। यदि वे पं. क्षेमकरण त्रिवेदी अथवा पं. हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार के भाष्य को पढ़ते तो उन्हें मन्त्रों का क्रमशः ये भावार्थ मिलता।

(1) **अथर्ववेद (4.4.1)**–उत्तम वृत्तिवाले, परन्तु किसी रोगवश नष्ट दीप्तिवाले पुरुष के लिए ज्ञानी वैद्य ऋषभक आदि ओषधियों को खोदकर लाता है। इस औषधि से फिर सबल होकर यह तरुण चमक उठता है। औषधि का प्रयोग ज्ञानी पुरुष को ही कराना है। (पं. हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार)।

(2) अथर्ववेद (4.4.6)– जैसे लक्ष्य बेधने के लिए धनुष की डोरी को दृढ़ कसते हैं, वैसे ही बलवान् पुरुष राज्य प्रबन्ध को प्रजा के सुख के लिए यथा शास्त्र दृढ़ रखे और जैसे सिंह आदि हिरण आदि को दबोच लेत हैं, वैसे ही शत्रुओं पर धावा करके कुरीतियों को मिटावें। (पं. क्षेमकरण त्रिवेदी)

(3) अथर्ववेद (4.4.7)–शूरवीर पुरुष आदि उपकारी पशुओं को पालकर खेती, वाणिज्य, सेना आदि के यथायोग्य कामों में लगाकर संसार में सुख बढ़ावे। पं. क्षेमकरण त्रिवेदी के इस सूक्ष्म भावार्थ को पं. हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार ने और अधिक स्पष्ट किया है–यथा–दृढ़ संयमी जीवन बिताते हुए अश्व के समान वेगवाले हो, खच्चर के समान कार्यभार को वहन करें, बकरे के समान दिन भर गतिशील हों, मेंढे के समान शत्रुओं से टक्कर ले सकें तथा बैल के समान कार्य शकट (वाहन) के धुरी को धारण करने वाले हों। इन भावार्थों को पढ़कर लेखक द्वार व्यक्त उत्तेजना सम्बन्धी भ्रम का निवारण हो सकेगा।

(ध) अश्लील कथन–

(1) लेखक ने अथर्ववेद (20.133. 1–5) जिन मन्त्रों को किसी अश्लील भाष्य से यहाँ पर लिख दिया है, यदि वास्तव में वे वस्तुपरक तथ्यार्थ को समझना चाहें तो उन्हें पूर्व वर्णित भाष्यकार पं. क्षेमकरण त्रिवेदी एवं पं. हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार के भाष्य को पढ़ लेना चाहिए। जिनका आशय है–तुझ माता की दोनों प्रकाश की किरणें (शारीरिक बल और आत्मिक पराक्रम) पुरुषों (शरीरधारी जीवों) को सत्य शास्त्र में प्रकाशमान करती हैं। कुमारी–स्त्री आदि भी समय को न खोकर सदा पुरुषार्थ करें।

(2) अथर्ववेद (2.30.5) इसमें उपमालङ्कार को समझने की आवश्यकता है। मन्त्राशय है कि युवावस्था में परस्पर एक–दूसरे के चाहने वालों का ही विवाह हो। पति जहाँ तारुण्य शरीरवाला हो, वह धन कमाने की योग्यता भी रखता हो (पं. हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार)।

(3) अथर्ववेद (15.2.31) युवा पति–पत्नी दोनों परस्पर कामना करते हुए प्रसन्नवदन होकर गर्भाधान के लिए अपने अंगों को यथा विधि ठीक करें।

(4) अथर्ववेद (15.2.31) यहाँ गर्भाधान क्रिया का वर्णन है। हर्ष मनाते हुए पति–पत्नी, तुम दोनों सन्तान को उत्पन्न करो। परमेश्वर तुम दोनों की आयु को दीर्घ करे।

(5) ऋग्वेद (10.10.11) लेखक ने किसी भ्रमिक भाष्य के आधार पर बहन–भाई के सम्भोग की बात लिख दी है। पं. बिहारीलाल शास्त्री जी के भाष्य को पढ़िये तो भ्रम निवारण हो जायेगा। पत्नी पति को उपालम्भ देते हुए कहती है कि क्या तू भ्राता है, कि जिससे तू नाथ नहीं हो रहा है? क्या मैं भगिनी हूं जो निर्गति बाध्य होकर चली जाऊँ अर्थात् तुम मेरे पति हो, मैं तुम्हारी पत्नी हूँ। अतः कामातुर होकर कह रही हूँ अपने तन से मेरे देह की संगति करो।

(6) यजुर्वेद (23.22) लेखक ने यहाँ पर भी घृणास्पद अश्लील वर्णन पढ़ लिया। हमने जब इसका भावार्थ देखा तो मिला– "सम्पूर्ण प्रजा कृषि में प्रवृत्त होकर राष्ट्र को दुष्काल आदि से बचाती है, जहाँ इस कार्य से (क) शक्तिशाली बनाती है, (शकुन्तिका), (ख) ऐश्वर्य को बढ़ाती है (भगभगा), (ग) प्रसंगगति बुराइयों से बची रहती है। राजा इसी उद्देश्य से प्रजा में राष्ट्रीय भावना को जागृत करता है। प्रजा भी राजा से प्रचारित किये जाने वाले ज्ञान को ध्यान से सुनती है।" (पं. हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार)

(7) यजुर्वेद (23.21) में लेखक ने न जाने क्यों वेश्याओं को देख लिया? उपर्युक्त भाष्यकार के ग्रन्थ को देखते तो उन्हें मिलता– "राजा राष्ट्र में व्यभिचार को रोकने के लिए विलासी पुरुष को उल्टा लटकवा दे तथा राष्ट्र में व्यभिचार को हानियाँ व संयम के लाभों के ज्ञान का प्रचार करवाये, जिससे लोगों की मनोवृत्ति में अनुकूल परिवर्तन किया जा सके।"

(8) ऋग्वेद (10.61.7) में लेखक अति निन्दनीय वचन नहीं देखते–यदि वे पं. बिहारीलाल शास्त्री के भाष्य को पढ़ लेते–यदि किसी व्यक्ति को पत्नी–समागम करने पर पुत्र प्राप्त न होकर कन्या ही प्राप्त हो तो वह अपनी कन्या को, उससे गृह के स्वामी और सर्व कार्यों के पालक उत्तराधिकारी पुत्र रूप में प्राप्त करे, यही वेद ज्ञान प्रकट करता है।

(प) वेदों में नियोग प्रथा – लेखक ने यह जो लिखा है– "वेदों में परायी स्त्री के साथ सम्भोग करना और बच्चे पैदा करने की खुली छूट है।" यह नितान्त भ्रामक वाक्य है। नियोग का यह प्रयोजन नहीं है। आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक के अनुसार वहाँ तो कठोर निर्देश है कि पूर्ण अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अर्थात् स्वप्न में भी वीर्य स्खलन न हुआ हो, ऐसी पूर्ण जितेन्द्रियतायुक्त पुरुष व स्त्री ने चारों वेद, तीन वेद, दो वेद न कम से कम एक वेद का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन नहीं किया हो, उसे गृहस्थ बनने का अधिकार नहीं। अर्थात् संयमपूर्वक शिक्षा प्राप्त युवक युवती विवाह करें। विवाह का ध्येय–धर्म, सन्तति एवं रति को माना गया है। महर्षि दयानन्द का मन्तव्य तो यह है कि सन्तानोत्पादन हेतु ही शारीरिक सम्बन्ध होवे। जब सन्तान की इच्छा नहीं हो तो कभी शारीरिक सम्बन्ध करें ही नहीं। महर्षि दयानन्द का सोचने का स्तर अत्युच्च कोटि का था, उनके स्तर तक सोचने का मस्तिष्क व चित्त आज के श्रेष्ठतम् कहाने वाले मनुष्यों में भी नहीं है। जो उद्देश्य विवाहित स्त्री–पुरुषों के शारीरिक संयोग का होता है, वही उद्देश्य नियोग का भी होता है। केवल अन्तर यह है कि नियोग अस्थाई व आपातकाल की व्यवस्था है, जबकि विवाह का उद्देश्य न केवल सन्तानोत्पत्ति है अपितु समाज को एक व्यवस्थित व श्रेष्ठ रूप देना भी है, और यह आजीवन स्थाई व्यवस्था है। दोनों ही व्यवस्थाओं पर सामाजिक अनुमति की मुहर लगाना अनिवार्य है। इसके बिना दोनों ही व्यवस्थाएँ व्यभिचार की कोटि में आ जाती हैं। नियोग के तत्त्वार्थ को जिन्हें विस्तार पूर्वक समझना है, उन्हें महर्षि दयानन्द कृत 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' एवं 'सत्यार्थप्रकाश' से इस प्रकरण को पढ़ना चाहिए। महर्षि तो समाज में व्यभिचार व कुकर्म को रोकने का उपाय लिखते हैं–उनके अनुसार "इस व्यभिचार और कुकर्म को रोकने का एक ही श्रेष्ठ उपाय है कि जो जितेन्द्रिय रह सके–विवाह व नियोग न करे तो ठीक है, परन्तु जो ऐसे नहीं हैं उनका विवाह और आपातकाल में नियोग होना चाहिए।"

महर्षि दयानन्द विधवा व विधुर को उसी आपातकाल में नियोग का परामर्श देते हैं, जब उनको सन्तान की इच्छा हो, अथवा जिस विधुर या विधवा से ब्रह्मचारी न रहा जा सके। इससे उनके काम का फल सन्तान प्राप्त हो जायेगी, क्योंकि

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

☞ पृष्ठ 08 का शेष

वेदों की विवेचना : एक...

महर्षि बिना सन्तान की इच्छा के बीज व्यर्थ फेंकना व्यभिचार व पाप मानते हैं। नियोग आपद्धर्म है–सामान्य प्रचलन नहीं है, इसे सभी को ध्यान में रखना होगा। वर्तमान में विवाह पूर्व सह सम्बन्ध एवं समलैंगिकता को वैधानिक बनाये जाने की माँग स्वदेश में, विदेशों के अनुकरण में चल पड़ी है, लेखक को वेदों की अवमानना के विचार को छोड़कर इन कुचेष्टाओं की अवहेलना करनी चाहिए। लेखक को यह लिखने में नजाने क्यों संकोच नहीं हुआ– ''विचार करने की बात है आर्य समाज ने इसके विरोध एवं वेश्याओं के पुनर्वास के निरन्तर प्रयास किए हैं इसलिए यह बात नितान्त असत्य व कपोल–कल्पित है। महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद (10.85.45) का भाष्य तो नहीं किया है, प्रत्युत्त इसे सुचरित्र प्रधान आपात्व्यवस्था नियोग की पुष्टि में संदर्भित किया किया है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भारतीय वैदिक संस्कृति की प्रोज्ज्वलता के लिए 16 संस्कारों का वर्णन किया है, जिनमें प्रथम गर्भाधान संस्कार है, जिसकी विधि उन्होंने अपनी पुस्तक 'संस्कार विधि' में वेदों के अनुसार अंकित की है। पाठकों को स्मरण होगा कि आदिशंकराचार्य का मण्डन मिश्र से जब शास्त्रार्थ हुआ था, तब इसी संस्कार की अनभिज्ञता के कारण शास्त्रार्थ में अवरोध हुआ था। शंकर ने अंतराल के बाद इस पर अपनी बात रखी थी, किन्तु महर्षि दयानन्द ने इसका वर्णन वेद–कथनानुसार किया है। गोपन वर्णन को सार्वजनिक करने से लेखक की द्वेष मनोभावना कोई उत्तम प्रभाव नहीं छोड़ती है। ऐतरेय ब्राह्मण जो इत (लोक) से इतर (परलोक) की दार्शनिक यात्रा का ग्रन्थ है, उसमें वेश्यावृत्ति की खोज इन्हीं लेखक द्वारा सम्भव हो सकती है, आश्चर्य है।

(फ) वेदों में स्वर्ग विलासिता – लेखक की यह नितान्त भ्रान्त दृष्टि है कि वेदों में जिस स्वर्ग की व्याख्या की गई है, उससे प्रतीत होता है कि ब्राह्मणवादी हिन्दुओं का स्वर्ग वेश्याओं, सुन्दरियों एवं नर्तकियों का स्थान है। इस कथन की पुष्टि में जो प्रमाण दिये गये हैं, उनके मन्त्रार्थ यहाँ पर प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनको पढ़कर पाठकगण स्वयं तथ्यान्वेषण कर सकेंगे।

(1) अथर्ववेद (4.34.6) में व्यक्त किया गया है कि हमारे घरों में घृत, मधु, पवित्र जल, दूध व दही की कमी न हो, घर में चारों ओर कमलों के छोटे–छोटे तालाब हों। स्वर्गलोक कहीं और नहीं धरती पर हमारा घर ही स्वर्ग अर्थात् सुख का स्थान है।

(2) ऋग्वेद (10.107.9) के अनुसार स्वर्ग आकाश में कहीं अन्यत्र नहीं अपितु अगला जन्म उत्तम परिस्थितियों में होता है। लोग सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित पत्नियों को पाते हैं, देवताओं के आनन्द को पाते हैं। दैवी व भौतिक आपदाएँ जो बिना चाहे आ जाती हैं उन्हें भी प्रजापालक, परोपकारी, रक्षकगण जीत लेते हैं। प्रजा प्रिय जनों को उत्तम ऐश्वर्य मिलता है, विपत्तियाँ दूर होती हैं। धरती पर ही ऐसा स्वर्ग होता है।

(भ) स्वर्ग में वेश्यावृत्ति– ''स्वर्ग में अच्छी–अच्छी अप्सराओं को प्राप्त करने की होड़ लगी रहती है। अत्यन्त आनन्द देती हैं। ऐसी कोमलांगियों को प्राप्त करने की प्रार्थना करने की बात'' लेखक द्वारा अथर्ववेद (2.2.3–5) में बतायी गयी है, जो सर्वथा मिथ्या है। लेखक इसके वास्तविक अर्थ को निम्न प्रकार पढ़कर संशोधित कर सकते हैं। प्रभु शक्तियाँ गन्धर्वपत्नी कहलाती हैं। ये शक्तियाँ ही सब प्रजाओं में विचरण करने के कारण 'अप्सरा' कही गयी हैं। इन अत्यन्त प्रशस्त अनिन्दनीय प्रभु–शक्तियों से निश्चय पूर्वक संगत होता हूँ। इन प्रजाओं में विचरण करने वाली शक्तियों अर्थात् अप्सराओं के आधार वेदवाणी के धारक प्रभु ही तो हैं। अभ्रों व बादलों में प्रकट होने वाली विद्युद्‌रूपद्युति में या नक्षत्रों में प्रकट होने वाले प्रकाश में जो शक्तियाँ हैं वे सम्पूर्ण वसुओं वाले ज्ञानी प्रभु में समवेत होती हैं। हे दिव्य गुणों वाली शक्तियों! उन आपकी प्राप्ति के लिए मैं निश्चय से नमस्कार करता हूं। सारांशतः प्रभु के प्रति नमन से हमें वे दिव्य शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, जो शत्रुओं को रुलाने वाली, इच्छाओं को पूर्ण करने वाली, इन्द्रियों को कान्ति देने व मनों को मुग्ध करने वाली होती हैं। (पं. हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार)

(य) स्वर्ग, मधु एवं वीर्यवर्धन– लेखक को ऋग्वेद (9.74.6) में यह उल्लेख बड़ा रोचक लगता है। हजारों नहरें मधु से स्वादवाली (वीर्य वर्धनी) तीसरे आकाश (स्वर्ग) में रहती हैं। उनकी यह रोचकता या आलोचकता क्षण में ही क्षति हो जायेगी, जब वे इस मन्त्र के वास्तविक भाष्य को पढ़ने का कष्ट करेंगे। जो इस प्रकार है– ''अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य वाले तीसरे अन्तरिक्ष लोक में जो रजोगुणविशिष्ट हैं, उसमें नाना प्रकार के ऐश्वर्य हमको प्राप्त हों, जो ऐश्वर्य जीव को अशक्त करने वाले न हों। वे शक्तियाँ जो नाना प्रकार के स्निग्ध पदार्थो को देने वाली हैं और हविरूप अमृत को देने वाली है और जो द्युलोक के नीचे रखी हुई हैं, जिनमें चार प्रकार की दीप्तियाँ हैं– अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों प्रकार के फल संयुक्त हैं, वे शक्तियाँ परमात्मा हमें प्रदान करे।'' (पं. शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ का भाष्य)।

वेदों की सराहना – भारतरत्न डॉ. भीमराव अम्बेडकर का तात्कालिक परिस्थितिजन्य हिन्दू धर्म के प्रति जो भी विचार रहा हो, किन्तु उन्होंने वेदों की अवमानना नहीं सराहना की है। स्वामी वेदानन्द तीर्थ की 'राष्ट्र रक्षा के वैदिक साधन' नामक पुस्तक का प्राक्कथन डॉ. अम्बेडकर द्वारा अंग्रेजी में लिखा गया था, उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं। ''लेखक की स्थापना यह है कि स्वतन्त्र भारत वेद प्रोक्त शिक्षा को इस प्रकार अपने धर्म के रूप में अंगीकार करे। यह शिक्षा सम्पूर्ण वेदों में विभिन्न स्थलों में निर्दिष्ट है और इसका लेखक ने इस पुस्तिका में संकलन कर दिया है। मैं यह तो नहीं कह सकता कि यह पुस्तक नवीन भारत का धर्म ग्रन्थ बन जाएगी, किन्तु यह मैं अवश्य कह सकता हूँ कि यह पुस्तक पुरातन आर्यों के धर्म ग्रन्थों से संकलित उद्धरणों का केवल अद्भुत संग्रह ही नहीं है, प्रत्युत यह चामत्कारिक रीति से उस विचारधारा तथा आचार की शक्ति को प्रकट करती है जो पुरातन आर्यों में उस निराशावाद (दुःखवाद) का लवलेश भी नहीं था, जो वर्तमान काल के हिन्दुओं में प्रबल रूप से छाया हुआ है। इस दृष्टि से मैं इस पुस्तक का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।''

मनु और मानव रचना–महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने प्रमुख ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' एवं 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में मनुस्मृति के आधार पर स्पष्ट कर दिया है कि गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। शूद्र मूर्ख हो तो शूद्र रहता है और जो उत्तम गुणयुक्त हो तो यथायोग्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाता है। वैसे ही क्षत्रिय और वैश्य के विषय में भी जान लेना। वेद से मनु को और मनु से विश्व का मानव शब्द प्राप्त हुआ है। वेद कहता है– **''मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्''** (10.53.6) आकार–प्रकार से मनुष्य दिखाई देने वाले मानव, तू वास्तव में मननशील, मानव बन और दिव्य सन्तान या प्रजा का निर्माण कर। सहज बहते हुए जल को ऊपर उठाने के लिए यन्त्र बल की आवश्यकता है, ऐसे ही मनुष्य को ऊपर उन्नति करने के लिये मनन की आवश्यकता होती है। इसी के बल पर व्यक्ति शिक्षक, रक्षक, अधिकारी, नायक सभी कुछ बनता है, कोई–कोई सन्त महात्मा जगत् का उद्धारक भी बन जाता है, किन्तु जो मनुष्य उच्च पद पर पहुँचकर भी मनन न कर पाये तो वह अवमानना को ही विवेचना मान बैठता है। सदैव से वेदों को अपौरुषेय या ईश्वर कृत ग्रन्थ विश्व स्तर पर कहा जाता रहा है, फिर इन्हें कोई मानव रचना कहता है तो कहने से पहले उसे पता करना चाहिए कि ये किस मानव की रचना है। जिन अंशों को लेखक ने पुस्तक में प्रस्तुत किया है, वे मननशील मानव की नहीं, अपितु आमनवीय भावना का संकेत करते हैं। उन्होंने किसी एक मानव का नाम तो नहीं बताया। अपितु पुरोहितों, पण्डितों, ऋषियों–मुनियों द्वारा लिखने की ात कह दी है। यदि किसी व्यक्ति में चिन्तन–मनन पूर्वक समाज को उत्तम बनाने, ऊपर उठाने की भावना नहीं है, तो वह इन उपाधियों को धारण करने का पात्र नहीं है। यदि वास्तव में वह इन उपाधियों का अधिकारी है तो वह मननशील श्रेष्ठ होगा, आर्य होगा, पण्डित होगा। हिन्दी कवि ने अपने दोहे में ठीक ही कहा है–

''करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
जा गन्धी घर आपने, इतर दिखावत काहि।''

जिस लेखक को जाति व वर्ण में अन्तर करना न आता हो (पृष्ठ 62–63) तो वह अपने समुदाय के लोगों को भ्रमित कर बड़ाई की इच्छा तो कर सकता है, किन्तु सर्वसमाज में हेय दृष्टि से ही देखा जायेगा। एक मान्य सन्त रविदासजी महाराज थे, जिनका शिष्यत्व महलों की रानी तक प्राप्त करना चाहती थीं। उन्होंने कहा था– 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' इसके उलट जो व्यक्ति 'गंगा को ही कठौती' बना देता हो, अर्थात् प्रवाहमयी जाह्नवी–वेदगंगा की धारा को ही प्रदूषित कर कठौती बना देता हो, तो उसे अपनी देन पर स्वयं विचार कर लेना चाहिए।

विदेशी आक्रान्ता भी इस तथ्य को जानते थे– ''अन्धकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं। मृतवत् है वह देश जहाँ साहित्य नहीं।'' इसलिए उन्होंने इस विश्वगुरु भारत के विशाल पुस्तकालयों के महान् ग्रन्थों को जलाकर न केवल शीतल जल को गर्म किया, प्रत्युत भारत देश की शान्त शीतल संस्कृति को जलाकर भस्म करने का भी पाप किया। भारत की चारों दिशाओं में रहने वाले वे त्यागी तपस्वी ब्राह्मण धन्य हैं, जिन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद की संहिताओं को अनवरत साधना से कण्ठस्थ करके जीवित रखा। भारत भ्रमण के बाद लार्ड मैकाले ने 2 फरवरी 1835 को ब्रिटिश संसद को सम्बोधित करते हुए भारत की आध्यात्मिक व सांस्कृतिक विरासत की सराहना की थी और अंग्रेजी सत्ता को बनाये रखने के लिए उसे अपनी शिक्षा पद्धति द्वारा प्रतिस्थापित करने का सुझाव दिया था। प्रोफेसर मैक्समूलर ने पहले तो वेदों को गडरियों के गीत व बच्चों की बिलबिलाहट कहकर प्रचारित किया, किन्तु जैसे सूरज के सामने छा जाने वाले मेघों को सूरज की किरणें ही छांट देती हैं वैसे ही जब महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी के वेदभाष्य के वे नियमित ग्राहक बने, तो वह वेद को विश्व ज्ञानकोश

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

पत्र/कविता

अहं बढ़े जिस ज्ञान से वह नहि सच्चा ज्ञान

रेख हाथ की देखकर, तू जाता घबराय।
किस्मत अपनी आप ही, हाथों से बन जाय।।

उसने रच कर दे दिया, करते हम उपभोग।
देने वाला और है, भूल गये हम लोग।।

अंहकार हो ज्ञान का, ज्ञान नहीं टिक पाय।
अवगुण गुण से आ गया, सभी गुणों को खाय।।

हक अपने सब मांगते, छीन झपट कर पाय।
भूले बैठे फर्ज सब, कौन याद दिलवाय।।

अहं बढ़े जिस ज्ञान से, वह नहि सच्चा ज्ञान।
अहं भगाये ज्ञान जो, उसको सच्चा मान।।

अहं भाव नर जाति में, दीमक सा लग जाय।
जिसके अंदर जन्म ले, भीतर भीतर खाय।।

चिंता में घुल घुल मरे, चिंता हट नहि पाय।
चिंतन में गर मन लगे, चिंता दूर भगाय।।

पल पल हर पल बीतता, जीवन दौड़ लगाय।
ज्यों मुट्ठी में नीर है, पल पल रीती जाय।।

दोष और के देखता, आलोचक कहलाय।
अपने अंदर झांक ले, फिर बैठा पछताय।।

सुरसा के मुख सा बढ़े, पेट नहीं भर पाय।
लालच आयु भर बढ़े, बस बढ़ती ही जाय।।

नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'
602/जी.एच. 53, सैक्टर 20,
पंचकूला

घर वापसी बनाम धर्मान्तरण

विश्व हिन्दू परिषद् द्वारा पिछले दिनों 'घर–वापसी' का कार्यक्रम चर्चा का विषय बन गया। यह चर्चा तीन स्तरों पर होती रही। (1) मीडिया अर्थात् दृश्य मीडिया टी. वी. पर तथा पाठ्य मीडिया पत्र–पत्रिकाओं में। (2) राजनीतिक दलों के स्तर पर जैसे–भाजपा, सपा, कांग्रेस, वामपंथी, तृणमूल कांग्रेस, जनता दल (यू)–जदयू, राष्ट्रीय जनता दल–राजद आदि। (3) हिन्दू–मुस्लिम धर्म या पंथ के आचार्यो और मौलवियों में। एक पक्ष राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ या उनके आनुषङ्गिक संघटनों विहिप, बजरंग दल आदि का भी था।

मेरी दृष्टि में इस विषय पर समग्रता से निष्पक्ष चर्चा छोड़ भी दें तो अपने देश भारत के परिप्रेक्ष्य में भी समग्रता से चर्चा–परिचर्चा की जरूरत है। कोई भी व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह अपने धर्म या पन्थ या मजहब को छोड़कर स्वेच्छा से दूसरे किसी भी धर्म या पन्थ को स्वीकार कर लेता है तो उसे धर्म या पन्थ परिवर्तन या अखबारी भाषा में 'धर्मान्तरण' कहा जाता है। 'घर वापसी' का यह अर्थ नहीं है। इसका अर्थ है कि कोई व्यक्ति या परिवार अपना पूर्व का धर्म जिसे उसने या उसके पूर्वजों ने छोड़कर दूसरा धर्म स्वीकार कर लिया था, अब वह व्यक्ति या उसका परिवार अपना वर्तमान धर्म या पंथ को छोड़कर अपने पूर्व के धर्म में पुनः लौट आता है तो वह 'घर वापसी' है। वस्तुतः घर वापसी का कार्यक्रम हो या कोई पीढ़ी दर पीढ़ी या कितने ही पुराने समय से चले आ रहे धर्म–विश्वास को त्यागकर किसी भी दूसरे धार्मिक विश्वास को स्वीकार करना चाहे तो उसमें रोक नहीं होनी चाहिए। बस एक ही शर्त होनी चाहिए कि यह मत या धर्म–परिवर्तन स्वेच्छा से हो कोई लोभ–लालच, भय या दबाव से न हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि धर्मान्तरण से पूर्व उस जनपद का सक्षम अधिकारी डी.एम. (डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट) या जिलाधीश के समक्ष धर्म–परिवर्तन करने वाला व्यक्ति या समूह शपथ पत्र प्रस्तुत करे जिसमें यह लिखा हो कि 'हम बिना किसी लोभ–लालच, भय या दबाव के केवल अपनी इच्छा से धर्म परिवर्तन कर रहे हैं।' और इस प्रकार किये गये धर्म–परिवर्तन को ही कानूनी (वैधानिक) मान्यता हो। सक्षम सरकारी अधिकारी की सहमति के बिना किया जाने वाला धर्म–परिवर्तन मान्य नहीं होना चाहिए। इसके लिए संसद् में विधेयक प्रस्तुत होना चाहिए।

1977 ई. में जब जनता पार्टी की केन्द्रीय सरकार दिल्ली में बनी थी, तब श्री ओमप्रकाश त्यागी ने जो उस समय जनता पार्टी के सांसद थे और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के महामंत्री थे 'धर्म स्वातंत्र्य विधेयक' नामक बिल संसद में लाने का कार्यक्रम बनाया था। दुःखद स्थिति यह रही कि इस प्रस्तावित 'धर्म स्वातंत्र्य विधेयक' का भारत और भारत के बाहर के ईसाई चर्चों ने घोर विरोध किया था। मुस्लिम संघटन भी 'धर्म स्वातंत्र्य विधेयक' के विरोधी थे। किन्तु कोई यह नहीं बता पा रहा था कि इस विधेयक में गलत बात क्या है? दुर्भाग्य से 1980 ई. में जनता पार्टी की सरकार गिर गई और विधेयक प्रस्तुत करने का त्यागी जी का विचार अधर में लटक गया। उस समय त्यागीजी ने कहा था कि व्यक्तिगत बातचीत में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री मोरार जी देसाई तथा गृहमंत्री चौधरी चरण सिंह ने संसद में बिल पेश होने पर समर्थन करने का वचन दिया था।

आज जो स्थिति है उसमें यह लगता नहीं है कि कोई पार्टी या व्यक्ति जो सांसद हो इस प्रकार का बिल संसद में प्रस्तुत करने का साहस कर सके। सैकुलर, सेकुलरिज्म या धर्म–निरपेक्षता का केवल ढिंढोरा पीटा जाता है, वस्तुतः सेकुलरिज्म का पालन करना कठिन है। किसी दूसरे को साम्प्रदायिक बताना और अपने को सेकुलर घोषित करना भारत में एक फैशन बन गया है। पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय ने आज से 61 वर्ष पूर्व लिखा था–''सैक्युलर' शब्द के धात्वर्थ कुछ भी क्यों न हों, शासन–शास्त्र में सर्वसम्मत और सर्वसम्मानित अर्थ यह है कि शासन के किसी विभाग में भी किसी मनुष्य के अधिकार उसके धर्म के आधार पर कम या अधिक नहीं होने चाहिए। इस परिभाषा के अनुसार आर्य समाज भी एक 'सैक्यूलर' संस्था है और वैदिक धर्म एक 'सैक्यूलर' धर्म। मुसलमान (और खासकर मौलवी–सम्पादक) मानते हैं कि एक फासिक और फाजिर मुसलमान महात्मा गाँधी से उत्कृष्ट हैं। स्वामी दयानन्द के मत में यह बात अन्यायपूर्ण, अवैदिक और अधार्मिक है।''

आज इसी कारण पाकिस्तान आदि देशों में जहां इस्लाम आदि को राष्ट्र का धर्म घोषित किया गया है वहाँ दूसरे धर्मावलम्बियों के साथ वैरभाव निभाया जाता है, उन्हें सताया जाता है। अभी कुछ ही दिन पहले जिनेवा में पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त के अल्पसंख्यकों ने प्रदर्शन किया और सप्रमाण बताया कि वहां हिन्दू आदि अल्पसंख्यकों के साथ अमानुषिक अत्याचार होते हैं। उनकी लड़कियों के साथ जबरन निकाह कर लिया जाता है। सिन्ध में अल्पसंख्यक हिन्दुओं के साथ अत्याचार का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि सन् 1947 ई. में देश–विभाजन के समय हिन्दुओं की संख्या जहाँ (30%) तीस प्रतिशत थी आज वहाँ हिन्दू 6% छह प्रतिशत रह गये हैं।

जहाँ तक 'घर–वापसी' या शुद्धि का प्रश्न है वहाँ यह बात माननी पड़ेगी कि अभी भी हिन्दुओं में उतनी जागृति या मिलाने की क्षमता नहीं आ सकी है जितनी मुसलमानों या ईसाइयों में है। 'घर–वापसी' का हल्ला या शोर ज्यादा है वस्तुतः वापसी तो नगण्य है। हिन्दू धर्मावलम्बियों (हिन्दुओं के धर्माचार्यों तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कर्णधारों को भी) को :आस्तिकवाद' के लेखक तथा प्रख्यात चिन्तक–विचारक पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय के इन अमृतवचनों से नसीहत लेनी चाहिए–

''मुसलमानों के पास शुद्धि (अपने धर्म में मिलाने) की फैक्टरी है शोरूम नहीं। वह बिना शास्त्रार्थ, बिना विज्ञापन, बिना शोर मचाये सैकड़ों नर नारियों को हिन्दुओं में से हड़प लेते हैं। ईसाइयों के पास फैक्टरी भी है शोरूम भी। उनके पत्र हैं, उनके पादरी हैं। उनके चर्च हैं और समस्त भारत में जाल के समान फैले हुये हैं। हमारे पास फैक्टरी कोई नहीं, शोरूम अवश्य है। माल बनता नहीं परन्तु माल का विज्ञापन बड़े जोर से दिया जाता है।''

डा. ज्वलन्त कुमार शास्त्री
सम्पर्क– 09415185521

☞ पृष्ठ 09 का शेष

वेदों की विवेचना : एक...

कहने पर विवश हो गये।

लेखक ने 'वेदों की विवेचना' में सन्दर्भ-ग्रन्थों की लम्बी सूची दी है, किन्तु इनमें विश्व विश्रुत परिष्कारवादी ग्रन्थ- 'ऋग्वेदादिभ्ज्ञाष्यभूमिका' एवं 'सत्यार्थप्रकाश' का नामोल्लेख नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता कि इन ग्रन्थों को उन्होंने पढ़ा न हो, पर इनकी स्थापनाओं को स्वीकार कर लेते तो उनके द्वारा पुस्तक लेखन की आवश्यकता ही समाप्त हो जाती, फिर उन्हें अपने वर्ग विशेष में धाक जमाने का अवसर भी न मिलता। हमने अपने इस लेखन में संस्कृत वाक्यों का प्रयोग नहीं किया है, पर यहाँ पर महामात्य आचार्य चाणक्य के दो श्लोकों के उद्धरण देने का लोभ संवरण नहीं कर पाते हैं। उन्होंने लिखा है-

'मणिर्लुटति पदाग्रे काचः शिरसि धार्यते।
क्रय विक्रय वेलायां काचः काचो मणिर्मणिः।।''

अर्थात् मणि पैर के आगे लोटती हो, कांच सिर पर धारण किया गया हो, परन्तु क्रय-विक्रय के समय कांच-कांच ही रहता है और मणि मणि ही रहती है। जिन गुरुओं ने शिष्य का निर्माण किया हो, समर्थ होकर उसे उनका कृतघ्न नहीं कृतज्ञ होना आचार्य चाणक्य से सीखना चाहिए।

'एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वा चानृणी भवेत्।।

जो गुरु एक भी अक्षर शिष्य को पढ़ा देता है, उस छात्र के लिए भूमण्डल में कोई वस्तु नहीं है जिसे देकर वह उर्ऋण हो जाये। लेखक से यह पूछना व्यर्थ है कि आपको वेद के बीसियों सहस्र मन्त्रों में एक भी प्रेरणा का बिन्दु नहीं मिला! क्योंकि लोकोक्ति है-जैसी दृष्टि-वैसी सृष्टि। महाभारत काल में गुरु जी ने दुर्योधन से कहा कि भ्रमण कर आओ और सज्जनों की सूची बना लाओ। युधिष्ठिर से कहा गया-तुम दुर्जनों की सूची बना लाओ। दोनों ही ने लौटकर गुरुजी को नकारात्मक ही उत्तर दिया। दुर्योधन को कोई सज्जन नहीं मिला और युधिष्ठिर को कोई दुर्जन नहीं मिला। किसी ने ठीक ही कहा है-

''नेक ने तो नेक जाना,
बद ने बद जाना मुझे।
अपने-अपने आइने में
हर एक ने पहचाना मुझे।।''

लेखक का फिर भी धन्यवाद- हमने स्थान-स्थान पर 'लेखक-लेखक' का अंकन किया है, जिसका तात्पर्य तथाकथित पुस्तक 'वेदों की विवेचना' के लेखक सेवानिवृत्त आई.ए.एस. श्री के.एम. सन्त से समझना चाहिए। उन्होंने पुस्तक के अन्तिम परिच्छेद में लिखा है कि उनकी कुछ पुस्तकों के सम्बन्ध में एक प्रदेश की सरकार द्वारा लेखक के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही प्रारम्भ की गयी थी। यह मामला मा. उच्च न्यायालय में लम्बित है। इस पर भी वे एक और विवाद पूर्ण पुस्तक लिखने में हिचके नहीं। परन्तु उन्होंने एक अच्छा सुझाव भी दिया है-"सभी पाठकों से अनुरोध है कि इस पुस्तक में उद्धरित सन्दर्भों से मिलान कर लें और यदि इस पुस्तक को कोई सन्दर्भ वेदों में वर्णित न हो तभी लेखक के विरुद्ध किसी भी प्रकार की कार्यवाही पर विचार किया जाय।" उनकी पुस्तक के पाठ संख्या 12, 'वेदों में अश्लीलता' के सभी सन्दर्भों के भ्रामक अर्थों का इस लेख में स्वच्छीकरण कर दिया गया है। किसी वैधानिक कार्यवाही की अपेक्षा वे स्वयं और पाठकगण इस, तथा ऐसी अन्य भ्रामक प्रस्तुतियों के सम्बन्ध में आत्म निर्णय करते हुए, इनसे बचने का प्रयत्न करते रहें, जिससे देश में विद्वेष न पनपने पाये। आपको ज्ञात होगा कि पिछले वर्ष सन् 2012 के प्रारम्भ में रूस देश में भगवद्गीता पर प्रतिबन्ध लगाये जाने का शोर विश्व भर में सुनाई दिया था, पर वह वास्तव में उसकी एक व्याख्या से सम्बन्धित था, और रूसी न्यायालय ने इस याचिका को निरस्त कर दिया था। इससे बढ़कर ध्यातव्य यह है कि पोलिश भाषा में गीता का अनुवाद पहले से उपस्थित रहने के बाद भी पोलैण्ड की 'अन्ना रे किंस्का' ने इसका नया अनुवाद इस वर्ष वाराणसी में रहकर संस्कृत सीखने के बाद मूल ग्रन्थ के आधार पर किया। लेखक को पता होना चाहिए कि ग्रामोफोन के आविष्कार के बाद सर्वप्रथम रिकार्ड वेदवाणी से ही भरा गया था, जो आज भी ब्रिटिश संग्रहालय में वेदों का डंका बजा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इसी युग में विश्व धरोहर के रूप में ऋग्वेद की संहिताओं को संरक्षित किया है। लेखक को धन्यवाद इसलिए कि उन्होंने विरोधी लेखन करके इस समीक्षक को तथ्य परक लेखन का अवसर प्रदान कर दिया। जैसी समीक्षा पुस्तक के पाठ सं. 12 की है वैसी ही पुस्तक के अन्य पाठों की भी समझ लेनी चाहिए।

प्रस्तुत वार्ता का श्री गणेश हाथी के कथानक से किया था, इति श्री होते-होते फिर गजराज याद आ गये। हाथी मार्ग में चलता जा रहा था कि एक पुलिया आ गई। हाथी को पता भी न था, किन्तु उस पर सवार चींटी बोल पड़ी-"हाथी भैय्या यदि मेरे बोझ से पुलिया टूटने की शंका हो तो मैं उतर जाती हूँ।" हाथी ने चींटी की बात तो सुनी नहीं पुलिया पार हो गया। आगे क्या देखता है कि गाँव के बहुत सारे काले कुत्ते उसे देखकर भौंकने लगे। हाथी का साथी महावत बोल पड़ा अरे कुत्तो ! तुम भौंकते रह जाओगे-हाथी चलता चला जायेगा। मित्र बुरा न मान लेना, यह दृष्टान्त तो आपको हँसाने के लिए लिख दिया है। बोझिल बातों के बाद यदि हँसने को मिल जाता है, तो मन हल्का-फुल्का प्रफुल्लित हो जाता है। "ओं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु" हे वेदमाता! हम सभी का मन कल्याणकारी विचारोंवाला है।

सम्पर्क सूत्र
वैदिक आश्रम, अलीगढ़ (उ.प्र.)

वेदायुर्वेदम्

● रवींद्र पोत्दार

पुरुष - व्याधि - औषध तथा क्रियाकाल

इस पुरुष (नर-नारी) को जिन के संयोग से दुःख होता है उनको व्याधियां कहते हैं। कहा भी है "विविधं दुःखमादधतीति व्याध्यः"। ये व्याधियां चार प्रकार की हैं आगन्तुक, शारीरिक, मानसिक एवं स्वाभाविक।

"आगन्तुक" रोग अभिधातरूप कारणों से उत्पन्न होते हैं। "शारीरिक" रोग अन्नपान के कारण तथा वात-पित्त-कफ और रक्त इनसे एवं इनके सन्निपात रूप में विषमता से उत्पन्न होते हैं। ''मानसिक'' रोग- क्रोध, शोक, भय, हर्ष, दुःख, ईर्ष्या, असूया, दीनता, मात्सर्य, काम, लोभ आदि से तथा इच्छा और द्वेष के भेदों से उत्पन्न होते हैं। ''स्वाभाविक'' रोग भूख, प्यास, वृद्धावस्था, निद्रा-मृत्यु आदि हैं। ये चारों रोग मन और शरीर को आश्रय करके होते हैं। इनके संबंध से जीवात्मा पाप पुण्यों का कर्त्ता और सुख दुःखों का भोक्ता है।

सम्यक् प्रकार के प्रयुक्त किये गये संशोधन, संशमन, आहार और विहार इन रोगों का निग्रह करते हैं। बाह्य संशोधन-शस्त्र, क्षार, अग्नि प्रलेप आदि से होता है। आभ्यंतर संशोधन वमन, विरेचन आस्थापन और रक्तमोक्षण से होता है।

क्रुद्ध अथवा बढ़े हुए दोषों को समान स्थिति में लाना संशमन कहलाता है। यह भी दो प्रकार का होता है। बाह्य और आभ्यंतर। बाह्य में आलेप, परिषेक, अभ्यङ्ग, कवल गण्डुष आदि रूप में और आभ्यंतर संशमन में पाचन, लेखन, बृंहण, विष प्रशमन आदि रूप में है। चार प्रकार का आहार-पेय, भक्ष्य, लेध्य और चूष्य द्वारा दोष प्रशमन, व्याधि प्रशमन और स्वास्थ्यकर आदि तीन प्रकार के कार्य में प्रयुक्त होते हैं। आचार- शारीरिक, वाचिक और मानसिक कर्म हैं। इनमें उत्क्षेपण अवक्षेपण आदि शारीरिक कर्म, स्वाध्याय आदि वाचिक तथा संकल्प-चिन्तन-मनन आदि मानसिक कर्म हैं।

आहार प्राणियों का तथा इनके बलवर्ण और ओज का मूल है। यह आहार छः रसों के आधीन है, रस द्रव्य के आधीन और औषधियाँ ही द्रव्य हैं।

औषधियाँ दो प्रकार की हैं स्थावर और जंगम। स्थावर चार प्रकार की होती हैं। वनस्पति- जिनमें पुष्प आये बिना फल आता है यथा वट, उदूम्बर आदि- वृक्ष-जिनमें पुष्प के पश्चात फल होते है, फैलने वाली एवं गुल्म रूप होती हैं वे विरुध (बेल) कहाती हैं तथा औषधि- जो फल पकने तक ही अस्तित्व रखती हैं। इनसे छाल, पत्ते, फूल, फल, मूल, कन्द गोंद और स्वरसादि तथा तेल-क्षार कांटे आदि बरते जाते हैं। जंगम औषधियों में -चमड़ा, बाल, नख, रक्त आदि का उपयोग होता है। इनमें जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज चार भेद होते हैं।

पार्थिव औषधियाँ-स्वर्ण-रजत (चांदी), मणि, मुक्ता, मैनसिल, मिट्टी का ठीकरा आदि हैं।

कालकृत औषध अर्थात् अतिवायु वाला, वायु रहित स्थान, धूप-छाया, चांदनी, अन्धकार, शीत, उष्ण-वर्षा, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर आदि विभाग को कालकृत कहते हैं। चिकित्सा में इनका उपयोग होता है यथा प्रवातं वर्जयेत, (तेज वायु का सेवन न करें) वा प्रवाल छोटते समय खरल को चांदनी में रखें, जमीन के अन्दर औषधि निश्चित अवधि के लिए रखें, दो समय प्रयोग करें आदि।

ये सब स्वभाव से ही दोषों के संचय-प्रकोप-प्रशमन और प्रतिकर में कारण हैं।

यह चार प्रकार के वर्ग के रोगों के प्रकोप-शान्ति में कारण कहा जो स्थावर, जङ्गम पार्थिव और कालकृत हैं। इस प्रकार से पुरुष, व्याधि, औषध और क्रियाकाल की संक्षेप में व्याख्या कर दी। पुरुष शब्द से इसे उत्पन्न करने वाले महाभूत द्रव्य समूह-अंग-प्रत्यंग-भेद, त्वचा, अस्थि, सिरा, स्नायु आदि। व्याधि शब्द से वात-पित्त-कफ-रक्त व इनके सन्निपात से होने वाले रोगों की तथा औषध के द्रव्य-गुण-वीर्य-विपाक, क्रिया- से स्नेह एवं छल आदि कर्म तथा काल- से सम्पूर्ण क्रियाओं में लगने वाले समय की व्याख्या संक्षेप में कर दी। आगे एक सौ बीस अध्यायों में उसे विशद् रूप में सूत्र स्थान, निदान स्थान, शरीर स्थान, चिकित्सास्थान और कल्पस्थान के अध्यायों में की जावेगी।

उज्जैन

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 23-24 \03 \2016
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39\57

हिन्दी पुत्री पाठशाला खन्ना में मनाया गया ऋषि बोधोत्सव

हिन्दी पुत्री पाठशाला सीः सैः खन्ना में ऋषि बोधोत्सव दिवस तथा भजन गायन आयोजित किया गया जिसमें स्थानीय डी.ए.वी. संस्थाओं के अध्यापक/अध्यापिकाओं, छात्र/छात्राओं तथा आर्य समाज खन्ना के सदस्यों ने भाग लिया। समारोह का शुभारम्भ संस्था की मैनेजर श्रीमती सरोज कुन्दरा, स्थानीय मैंनेजिंग कमेटी तथा आर्य समाज खन्ना के सदस्यों, के स्वागत से किया गया। हवन के पवित्र मन्त्रों के साथ सारा वातावरण निर्मल हो गया। मुख्यातिथि द्वारा ज्योति प्रज्ज्वलित की गई। इस अवसर पर श्री विजय मोहन भांबरी श्री, सोहन लाल, प्रि. ममता शर्मा, श्री सोमदेव आर्य , श्री जितेन्द्रीय भूषण, श्री देवसेन, श्री प्रितपाल गुजराल, डॉ. के सी गर्ग, श्रीमती ऊषा वर्मा, सुश्री ऊषा भटनागर, श्रीमती सरोज गुप्ता, श्री ओम प्रकाश छाबड़ा, श्री कृष्ण चंद धीर तथा श्री मोहन लाल उप्पल जी उपस्थित रहे। श्रीमती सरोज कुन्द्रा ने मुख्यातिथि के परिवार की दानशील प्रवृत्ति, स्वच्छता प्रियता के बारे में परिचय देते हुए कहा कि इतने धनाढ्य परिवार से संबंध रखते हुए भी ये अहंकार शून्य हैं। उन्होंने स्वामी जी के उपकारों का स्मरण कराया तथा साथ ही यज्ञ की महिमा पर बोलते हुए कहा कि यज्ञ त्याग, परमार्थ और दान का नाम है। हिन्दी पुत्री पाठशाला (सीः सैः) की छात्राओं द्वारा स्वामी दयानन्द जी के जीवन पर आधारित एक लघु नाटिका समारोह का मुख्याकर्षण रही। मुख्यातिथि द्वारा भजन गायन में प्रतिभागी विद्यार्थियों को ईनाम वितरित किए। प्रि. अनीता वर्मा जी ने आए हुए अतिथियों का धन्यवाद किया। कार्यक्रम के अन्त में यज्ञशेष वितरित किया गया।

डी.ए.वी. समालखा ने आयोजित किया वार्षिक खेलोत्सव

डी.ए.वी. सैन्टेनरी पब्लिक स्कूल, चुलकाना रोड, समालखा में वार्षिक खेलोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। हरियाणा एवं पंजाब के राज्यपाल एवं चण्डीगढ़ के प्रशासक महामहिम प्रोफेसर कप्तान सिंह सोलन्की बतौर मुख्यातिथि विद्यालय में पहुंचे। इस अवसर पर अम्बाला के सांसद श्री रतन लाल कटारिया एवं श्रीमति बन्तो कटारिया, करनाल के सांसद श्री अश्विनी चोपड़ा जी की धर्मपत्नी श्रीमति किरण चोपड़ा, हरियाणा राज्य परिवहन मंत्री श्री कष्ण लाल पंवार, पानीपत के एम.एल.ए. श्री महिपाल ढांडा तथा समालखा के एम.एल.ए. श्री रविन्द्र मछरौली, डीएवी कालेज प्रबन्धकृर्त्री समिति के कोषाध्यक्ष तथा स्कूल के चेयरमैन श्री महेश चोपड़ा, क्षेत्रीय स्कूल निदेशक श्री के.एल. खुराना, स्कूल प्रबंधक श्री चन्द्रमोहन खन्ना विद्यालय में उपस्थित हुए। स्कूल प्राचार्या श्रीमती सपना गोयल ने समस्त आगन्तुक महानुभावों का हार्दिक अभिनन्दन किया। कार्यक्रम का शुभारम्भ मुख्यातिथि द्वारा दीप प्रज्ज्वलित करके किया गया। महामहिम राज्यपाल जी ने आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित नई रसायन विज्ञान प्रयोगशाला का उद्घाटन किया। छात्रों ने राज्यपाल जी को परेड की सलामी दी और स्कूल के छात्र–छात्राओं ने स्वागतगीत प्रस्तुत किया। इस अवसर पर दौड़ प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया।

2014–2015 में सी.बी.एस.ई. बोर्ड में पाँचों विषयों में 10 सी.जी.पी.ए. प्राप्त करने वाले अंजू पालीवाल, प्रेरणा वत्स, कोमल देवी तथा साहिल पूनिया तथा राज्य स्तरीय और राष्ट्रस्तरीय खेल प्रतियोगिताओं में अपना परचम लहराकर विद्यालय का नाम रोशन करने वाले छात्र अदिति, निधि शर्मा, छवि, विशाल, दिनेश, गौरव, हरदीप, मोहित, अमित, सचिन, अमन, योगिता, अमीषा तथा मोहित गाहल्यान को महामहिम राज्यपाल जी ने अपने हाथों से पुरस्कृत किया। स्कूल में अच्छी सेवाओं के लिए चपरासी सेठपाल तथा ड्राईवर सुभाष शर्मा तथा माली पालेराम तथा 25 वर्षो से अधिक स्कूल में अच्छी सेवाएं देने हेतु श्रीमती भावना कौशिक, श्रीमती कमलेश शर्मा तथा सी.बी.एस.ई. बोर्ड में बारहवीं कक्षा का अच्छा परिणाम लाने के लिए श्रीमती अंजली सलूजा को बैस्ट टीचर अवार्ड तथा शारीरिक शिक्षा शिक्षक श्री सुरेन्द्र सरोहा को प्रशंसा पत्र से सम्मानित किया गया।

कार्यक्रम के अन्त में क्षेत्रीय निदेशक श्री के.एल. खुराना ने हरियाणा एवं पंजाब के राज्यपाल अन्य गणमान्य अतिथियों, हरियाणा पुलिस तथा अधिकारियों, पत्रकारों, टी.वी. चैनल एवं सभी अभिभावकों का हार्दिक धन्यवाद किया तथा वार्षिक खेल उत्सव के कार्यक्रम के सफल आयोजन के लिए स्कूल श्रीमती सपना गोयल तथा स्टाफ के सभी सदस्यों को बधाई दी।

डी.ए.वी. मूनक के अध्यापकों ने मनाया ऋषि बोधोत्सव

बाबु बृिश भान डी.ए.वी. सीनियर सैकेंडरी पब्लिक स्कूल मूनक में स्वामी दयानंद जयंती एवं ऋषि बोधोत्सव बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस अवसर पर एक हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। इसमें स्कूल के प्रिंसिपल श्री संजीव शर्मा एवं अध्यापकों ने भाग लिया। इस अवसर पर स्कूल के प्रिंसिपल ने स्वामी दयानंद जी के जीवन एवं उपलब्धियों पर प्रकाश डाला एवं कहा कि हमें ऋषि का जीवन चरित् पढ़ते रहना चाहिए। उपवास करते बालक मूल शंकर के मन जिव प्रश्नों ने जन्म लिया उन पर बुद्धि पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। ईश्वर से प्रार्थना करते हुए प्रिंसिपल महोदय ने कहा कि हम ज्ञान के प्रचार में महत्वपूर्ण योगदान देते रहें एवं एक अच्छे समाज के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकें। अध्यापक श्रीकांत शास्त्री, संजीव सिंगला, सरिता जैन एवं पूनम मदान ने भी अपने विचार एवं भजन प्रस्तुत कर इस पर्व को सार्थक बनाने में योगदान दिया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**